हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परम्परा

डा॰ बदरीदास

हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परम्परा

डॉ॰ बदरीदास

हिन्दी-उपन्यास : पृष्ठभूमि और परम्परा

[भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० की उपाधि केलिए स्वीकृत शोध प्रबंध]

डॉ० बदरीदास

ग्रन्थम्
शोध ग्रन्थों के प्रकाशक
रामबाग, कानपुर

ग्रंन्थम

३०३१

● प्रकाशक
ग्रन्थम रामबाग कानपुर-१२
● प्रकाशन काल
अक्टूबर १९६६
● आवरण-मुद्रक
मनोहर प्रिंटिंग प्रेस कानपुर
● ग्रन्थ मुद्रक
मानक प्रिण्टर्स आनन्दबाग कानपुर-१

● मूल्य
२० ००

आभार-प्रकाशन

मेरा शोध काय स्वर्गीय डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री की सम्मति स आरम्भ होकर लगभग पाँच वर्षों बाद १९६२ म भागलपुर विश्वविद्यालय क स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग क अध्यक्ष प्रा० श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए० डी० लिट० विद्यावाचस्पति क प्ररणादायक निदेशन म सम्पन्न हुआ। १९६३ क मार्च म भागलपुर विश्वविद्यालय ने इस पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। मैं अपन विद्वान निदेशक का आजीवन आभारी रहूँगा।

सवश्री शिवपूजन सहाय, व्रजरत्नदास दुर्गाप्रसाद खत्री और रामचन्द्र वर्मा से कुछ आवश्यक सूचनाएँ मिलीं। मैं इनका अनुग्रहीत हूँ।

खोज के सिलसिले म सहायता तो अनेक पुस्तकालयों से मिली पर सहायता के साथ सुविधा कवल नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) और चैतन्य पुस्तकालय (पटना सिटी) म प्राप्त हो सकी इसलिए उनक पदाधिकारी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

जिन स्वर्गीय और जीवित लखकों क रचनात्मक या आलोचनात्मक साहित्य क आधार पर मैंन प्रस्तुत प्रबन्ध को रूप प्रदान किया उनक प्रति सम्मान प्रकट किए बिना रहा नहीं जा सकता।

शोध-काय म श्रीमती मणिमाला दास का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है। उन्हें किन शब्दों म धन्यवाद दूँ?

शोध-ग्रंथों क सुरुचि-सम्पन्न प्रकाशक 'ग्रंथम' न प्रबन्ध क प्रकाशन का भार लेकर मुझ उपकृत किया है।

बदरी दास

उपनिदेशक,
राजभाषा विभाग
सचिवालय, पटना।

क्रम

आभार-प्रकाशन
प्रस्तावना ९-२६
अध्याय
१— पूर्व का कथासाहित्य २७-५२
२— उपन्यास एक नई कला ५३-९७
३— ऐतिहासिक पीठिका ९८-१३९
४— पूर्व इतिहास १४०-१७५
५— प्रारम्भिक दशक १७६-२२०
६— प्रतिनिधि उपन्यास-लेखक २२१-२६०
७— उपन्यासकारों के उपन्यासकार २६१-२९२
८— जासूसी उपन्यास के पिता २९३-३२४
९— मूलधारा ३२५-३७४
१०— उपधाराएँ ३७५-४२०
११— हिन्दी और अन्य भाषाओं के उपन्यास ४२१-४६०
१२— अन्य साहित्य-विधाओं का योगदान ४६१-४८१
१३— पाठकगण ४८२-५०२
१४— विश्व-उपन्यास के आलोक में ५०३-५१९
परिशिष्ट
१— परीक्षण, सूची एवं सूचना ५२०-५७४
२— पत्र और मुलाकात ५७५-५७८
आनुषंगिक सहायक सामग्री ५७९-५८३

प्रस्तावना

विवेच्य विषय

हिन्दी उपन्यास का इतिहास एक प्रकार से आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास है। वर्तमान काल गद्य-काल है और गद्य की विधाओं में उपन्यास अत्यधिक सम्पन्न एवं लोकप्रिय होने का दावा कर सकता है। उसने परम्परागत तथा नूतन साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ आत्मसात कर ली हैं और लेखकों-पाठकों का विशाल परिवार बसाया है। उससे भाषा को व्यंजना शक्ति, स्वच्छन्द गति और तरल नमनीयता मिली है। उसमें इतनी शक्ति और सम्भावना है कि उसने नाटककार, कवि, आलोचक एवं पंडित की प्रतिभा को भी आकृष्ट कर लिया है।[1] उसके प्रति समीक्षकों की जैसी रुचि और दृष्टि रहनी चाहिए वैसी नहीं रही है बल्कि वे उसकी विज्ञापन उसकी पूर्व परम्परा की उपेक्षा करते रहे हैं।

उपन्यास व्यक्ति की रचना होते हुए भी जनता का साहित्य है और व्यक्तिगत प्रतिभा के साथ ही सामाजिक जीवन की देन है। उसे उचित परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस पृष्ठभूमि में लिखा गया उस पर ध्यान रखते हुए उसके विकास की पूरी प्रक्रिया का निरूपण किया जाय। प्रस्तुत प्रबन्ध इस दिशा में एक मौलिक प्रयास है। सुविधा एवं संगति के लिए इसकी परिधि हिन्दी उपन्यास के प्रथम चरण तक सीमित रखी गई है।

सीमांकन का आधार पृष्ठभूमि और प्रवृत्ति की समानता है। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के समानान्तर ही हिन्दी उपन्यास का विकास हुआ है। दोनों के विकास की प्रथम स्थिति में एकरूपता है। सामयिक परिवेश में परिवर्तन होने से लोकरुचि में परिवर्तन होता है और रुचि-परिवर्तन साहित्य के

स्वरूप में परिवर्तन उपस्थित करता है। प्रथम महायुद्ध तक उपन्यास लेखन रुचि-विनय के अनुसार हुआ पर उसके बाद नई राष्ट्रीयता के उदय के साथ ही लोकरुचि में परिवर्तन हुआ जिसका प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखाई पड़ा। उस समय प्राय सभी भारतीय भाषाओं के उपन्यास में नवयुग का आविर्भाव हुआ। उसके पूर्व लिखे गये हिंदी उपन्यास विषय की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी शिल्प और संवेदना की दृष्टि से एक हैं। कतिपय वरिष्ठ उपन्यासकार उन्नीसवीं सदी से लिखना आरम्भ कर बीसवीं सदी तक लिखते रहे। १९१८ में 'सेवासदन' का प्रकाशन एक काल के अन्त और दूसरे का आरम्भ का स्पष्ट संकेत है। अतः प्रथम मौलिक उपन्यास 'मालती' के प्रकाशन काल से 'सेवासदन' के प्रकाशन काल तक अर्थात् १८७५ से १९१७ तक हिन्दी उपन्यास का प्रथम चरण माना जा सकता है।[३]

'सेवासदन' के पूर्व प्रेमचंद का एक उपन्यास 'प्रेमा' (१९०७) हिंदी में प्रकाशित हो चुका था किन्तु वह पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट कर ऐतिहासिक महत्व प्राप्त नहीं कर सका। कथाशिल्प की दृष्टि से 'सेवासदन' और 'प्रेमा' में लगभग उतना ही अन्तर है जितना सेवासदन और उसके पूर्ववर्ती उपन्यासों में। उसका आरम्भ और अन्त पुराने ढंग का है। आरम्भ में वातावरण का वर्णन इस प्रकार किया गया है 'सन्ध्या का समय है। डूबने वाले सूर्य की सुनहरी किरणें रंगीन शीशों की आड़ से एक अंग्रेजी ढंग पर सजे हुए कमरे में झाँक रही हैं ...।' अन्त में प्रेमचंद ने चार विधवाओं का विवाह क्या कराया एक बला मोल ली। 'हिन्दी प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट ने 'प्रेमा' का स्वागत इन शब्दों में किया

लिखने वाले ने तो अपनी समझ में विधवा विवाह की प्रथा के अनुमोदन में इसे लिखा है पर सो नहीं विधवा विवाह की ओर इसमें घृणा ही उठती है। इंडियन प्रेस के मालिक को चाहिए कि ऐसी पुस्तक न छापा करें।[४]

बालकृष्ण भट्ट जैसे स्वतंत्र विचार के लेखक 'प्रेमा' के विद्रोही स्वर को पहचान नहीं सके। वह प्रेमचंद की प्रथम कृति है जिसमें 'सेवासदन' की दिशा का निर्देश है। 'प्रेमा' सुमन को प्रत्याशित करती है। दोनों उपन्यास की समस्या नारी-पराधीनता की समस्या है यद्यपि 'प्रेमा' में वह विधवा विवाह की समस्या का अंग है और 'सेवासदन' में वेश्या समस्या का। 'प्रेमा' में प्रेमचंद की रचनात्मक प्रतिभा विशेषतः चरित्र निर्माण, वर्णन

शक्ति और कहानी-कला में प्रस्फुटित हुई है। फिर भी, उन्होंने स्वयं कुछ अपूर्णता का अनुभव हुआ और उन्होंने उसका पूर्ण, संशोधित रूप 'प्रतिज्ञा' नाम से प्रकाशित किया। इस तरह वह युगान्तरकारी उपन्यास सिद्ध नहीं हो सका।

जब १९१८ में 'सेवासदन' का प्रकाशन हुआ, हिंदी-संसार में धूम मच गई। हिन्दी-उपन्यास का मानो दूसरा जन्म हुआ और वह यूरोपीय उपन्यास के तुल्य माना गया। प्रेमचंद का प्रथम प्रौढ़ उपन्यास हिंदी का सर्वोत्तम समस्यामूलक उपन्यास बन गया। डा० श्यामसुंदर दास के कथनानुसार 'हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्द की रचनाओं ने युगान्तर उपस्थित किया। हिन्दी वालों ने उनके पहले मौलिक उपन्यास 'सेवासदन' का उतावली के साथ स्वागत किया और 'प्रेमाश्रम' निकलते ही वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहलाने लगे।' युगान्तर उपस्थित करने का श्रेय 'प्रेमा' को नहीं 'सेवासदन' को है, अतः हिन्दी उपन्यास के काल-विभाजन की रेखा उसमें निहित है। यदि प्रेमचन्द को मध्यबिन्दु मानकर काल-विभाजन किया जाता है तो प्रेमचन्द-काल का आरम्भ 'प्रेमा' से माना जाना चाहिए।

'सेवासदन' के प्रकाशन के साथ युगान्तर क्यों और कैसे हुआ इसे समझने के लिए इसके ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व का आकलन आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में तिलिस्मी-ऐयारी और जासूसी उपन्यासों की जो धाराएं फूटी वे बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में विशाल बन गई। 'सेवासदन' ने उनका बल और वेग फीका कर दिया। जो उपन्यास वक्त काटने के लिए पढ़ते थे वे लोकप्रिय उपन्यास के शौकीन तो थे ही, साहित्यिक उपन्यास में भी मनोरंजन की सामग्री ढूंढते थे। कुछ लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपन्यास का अध्ययन करते थे और उसमें सामयिक विचार का दर्शन करना चाहते थे। 'सेवासदन' ने दोनों की मांग पूरी की। उसमें पुराने और नये कथा-तत्वों का समन्वय इस कौशल से किया गया था कि भिन्न रुचि के पाठक उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। उसने हिन्दी-उपन्यास की परम्परा का व्यापक प्रतिनिधित्व किया। देवकीनंदन खत्री ने पाठकों की संख्या बढ़ाई थी। प्रेमचंद ने संख्या के साथ-साथ श्रेणी बढ़ाकर लोकरुचि का संस्कार किया। जहाँ तक अनूदित उपन्यासों का प्रश्न है भारतेन्दु-काल में उनका स्तर जैसा ऊंचा था वैसा द्विवेदी-काल में नहीं रहा। 'सेवासदन' के कुंअर साहब ने कहा था कि 'अनुवादों से

हिन्दी का अपकार हो रहा है। मौलिकता को पनपने का अवसर नहीं मिलता। प्रेमचन्द ने अपनी अनुपम मौलिक सृष्टि से हिन्दी-उपन्यास को बंगला की गद्‌गद्‌ भावुकता एवं कृत्रिम समास पदावली से मुक्त कर अपने पात्र की चिन्ता दूर कर दी।

उन्होंने डार्विन और मार्क्स की भाँति देश विदेश के कथासाहित्य का रसास्वादन किया था। पुराण से लेकर तिलिस्म होशरुबा तक वे चाट गए थे।[6] जो सभी ढंग के कथासाहित्य का अध्ययन करता है उससे अच्छे बुरे की परख में भूल हो सकती है। पर प्रेमचन्द ने तिलिस्म होशरुबा के आदर्श का अनुसरण नहीं किया। उन्नीसवीं सदी के महान यूरोपीय उपन्यासकार तथा सरशार रवीन्द्र देवकीनन्दन खत्री आदि भारतीय उपन्यासकार उनके प्रिय लेखक थे। पर उन्होंने उनमें से किसी का कुछ अनुकरण या अपहरण नहीं किया। वे उपन्यास और उसकी आलोचना का अध्ययन मनन करने से उसकी कला से परिचित हो चुके थे। उनके गहरे अध्ययन में उनके जीवन का व्यापक अनुभव मिल गया था। उनमें जन्मजात उपन्यासकार की प्रतिभा थी। फलतः हिन्दी को 'सेवासदन' की विभूति मिली।

वे सजग कलाकार थे। उन्होंने हेनरी जेम्स कोनराड, फ्लावेयर और ज्वायस के समान उपन्यास को कला के रूप में ग्रहण किया और उस कला को चरम रूप प्रदान किया यद्यपि उनकी कला कला के लिए नहीं थी।

सेवासदन का आरम्भ ही उसकी विशिष्टता का द्योतन करता है। 'पश्चाताप के कड़ुए फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाइयों पर पछता रहे थे।' यह आरम्भ प्रेमा के आरम्भ से सर्वथा भिन्न है। यहाँ पुराने उपन्यास की भाँति न तो प्रकृति की पृष्ठभूमि सजाई गई है और न पात्र को अनाम एवं अपरिचित रखा गया है न ही वस्तु और पात्र का वास्तविक परिचय कई पृष्ठों के बाद दिया गया है। यहाँ पात्र की शारीरिक रूपरेखा के बदले मानसिक दशा का वर्णन किया गया है। दारोगा कृष्णचन्द्र आरम्भ में ही पछताते दिखाई पड़ते हैं और वह भी बुराई पर नहीं भलाई पर जबकि उनके पूर्वज अन्त में पछताते थे और बुराई पर पछताते थे। सेवासदन के पन्ने उलटने पर आगे क्या होगा यह जिज्ञासा न होकर "ऐसा क्यों हुआ यह विचार मन में उत्पन्न होता है। पाठक जैसे जैसे आगे

बढ़ता है महसूस करता है कि वह परम्परागत उपन्यास को पीछे छोड़ रहा है।

सेवासदन के युगान्तरकारी होने का अथ यह नही है कि उसके पूव उपन्यास मे जड़ता थी और प्रमचन्द के आगमन के साथ ही उसका कायाकल्प हो गया। वस्तुत सेवासदन के पूव ही परिवतन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी। १९१४ १८ के बीच प्रकाशित होने वाले कुछ उपन्यासो म नवीनता की आभा फूटने लगी थी। १९१३ म देवकीनन्दन खत्री का स्वगवास हो चुका था। किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी अपने पथ पर अटल थ। उनसे अलग होकर कुछ उपन्यासकार नई भूमि गोड़ रहे थे। इन्ह आधुनिकता का अग्रदूत कहना प्रमचन्द के ऐतिहासिक महत्व को अस्वीकार करना नही है। परिवतन का प्रथम चिह्न मन्नन द्विवेदी के रामलाल (१९१४) म स्पष्ट है। उसम पहली बार ग्राम्य जीवन का यथाथ और पूण चित्र अकित किया गया। लाला भगवानदीन की अघट घटना (१९१४) देशी रजवाड़ो का वास्तविक रूप दिखाने वाला पहला उपन्यास है। छबीलेलाल गोस्वामी की जाविश्री (१९१६) शिल्प की दृष्टि स नया प्रयोग है। अवधनारायण ने विमाता (१९१५) म सवप्रथम साहित्यिक एव लोकप्रिय उपन्यास की विशेषताओ का सफलतापूवक सन्निवेश किया। यह अनुमान करना गलत होगा कि प्रमचन्द के बिना हिन्दी-उपन्यास का इतिहास दूसरा होता। वे सेवासदन लेकर नही आते तो भी परिवतन अवश्य होता हाँ उसम विलम्ब हो सकता था या उसकी दिशा बदल सकती थी। हिन्दी-उपन्यास का यह सौभाग्य है कि प्रमचन्द परिवतन के माध्यम एव प्रतीक बने और न केवल हिन्दी म बल्कि भारत के मूधन्य उपन्यासकार बने।

वे परम्परा से अलग होकर किसी दूसरी दिशा म नहीं मुड़े थे बल्कि उसे ही नया मोड़ देने म सफल हुए थे। दूसरे शब्दो में, सेवासदन पुराने भवन की ही एक नई मंजिल थी। नूतन म पुरातन किस रूप म विद्यमान है यह सेवासदन और देवकीनन्दन खत्री की काजर की कोठरी' पर तुलनात्मक दृष्टि डालन से स्पष्ट हो जाता है।' इस उपपत्ति से प्रमचन्द की कला एव व्यक्तित्व की अवमानना नहीं होती है स्वाभाविक विकास क्रम का परिचय मिलता है। उनकी अमर कृति हिन्दी उपन्यास के इतिहास की एक विशिष्ट अवस्था सूचित करती है उसकी अगति या अनस्तित्व नहीं। इस

सत्य पर इस तरह परदा डाल दिया गया है[10] कि लगभग अर्ध शताब्दी का उपन्यास साहित्य अंधकार मे पड़ा हुआ है। उस पर गम्भीरता और विस्तार से विचार करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। उसके सम्बन्ध में चलते चलते कुछ[11] कह दिया गया है या कही हुई बात को दुहराया[12] गया है। इस प्रकार की भ्रामक धारणाओ, मिथ्या आरोपों और निराधार कथनों का निराकरण होना चाहिए।

दृष्टिकोण

अनेक पुराने उपन्यास पुस्तकाकार प्रकाशित न होकर समसामयिक पत्र पत्रिकाओ की जिल्दो म दबे पड़ है। कुछ उपन्यासों की मौलिकता और रचना काल सदिग्ध तथा अनिश्चित है तो कुछ अपूर्ण ही है। उपलब्ध सामग्री के निरीक्षण परीक्षण तथा दुर्लभ सामग्री के अन्वेषण के उपरान्त चौदह अध्यायो म अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय का विवरण दिया जाता है।

किसी भी साहित्य रूप की उत्पत्ति आकस्मिक घटना नहीं होती है बल्कि उसके लिए पहले से ही भूमि तैयार होती है। उपन्यास के विकासात्मक विवेचन के लिए उसके पूववर्ती कथासाहित्य का परिचय अपेक्षित है। सस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रंश के गद्य-पद्यमय कथासाहित्य की भूमिका देना अनावश्यक ही नहीं आपत्तिजनक भी है क्योकि उपन्यास आधुनिक सभ्यता का साहित्य रूप है जो उसके समान ही पश्चिम से आया है। अत प्रथम अध्याय मे प्राचीन भारतीय कथा परम्परा का परिचय नहीं दिया गया है। उपन्यास गद्यकथा है। इसके अध्ययन के लिए यह जानना आवश्यक है कि इसके पूर्व गद्य म कैसी कथाए लिखी गई और यह उनका माध्यम कैसे बना। अत हिन्दी की पुरानी गद्यकथा के विकास और स्वरूप पर विचार किया गया है। उसके आलोक म उपन्यास की प्रवृत्तियो को समझने म सहायता मिलेगी और यह ज्ञात हो सकेगा कि यह उससे कहाँ तक भिन्न और कहा तक प्रभावित है।

दूसरे अध्याय मे देश विदेश मे उपन्यास के उदय और उसके कलात्मक वैशिष्ट्य का निरूपण है। आलोचकों ने पुराने उपन्यास की सोद्देश्यता पर सबसे अधिक और कला पक्ष पर सबसे कम ध्यान दिया है। इस अध्याय म पुरानी कथा-परम्परा से उपन्यास की तुलना करते हुए उसका तात्विक विवेचन किया गया है। इससे उसकी कला का सामान्य ज्ञान होता है और

यह भ्रांत धारणा दूर होती है कि प्रारम्भिक उपन्यासकार शिल्प के प्रति सजग नहीं थे। इसमें उपन्यास की परिभाषा और उसके सम्बन्ध में उसके रचयिताओं के दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला गया है।

जिन परिस्थितियों में उपन्यास की रचना हुई उनकी रूपरेखा तीसरे अध्याय में दी गई है। साहित्यिक इतिहासों और शोध ग्रंथों में ऐतिहासिक पीठिका प्राय निरपेक्ष रूप से दी जाती है जो बहुधा इतिहास की वस्तु बन जाती है। प्रबन्ध में बाह्य प्रभाव के स्रोत और स्वरूप का विवेचन करते हुए यह दिखाया गया है कि उपन्यास सामयिक सत्य को कहां तक प्रतिबिम्बित कर सका है।

प्रथम आधुनिक उपन्यास के दो दशक पूर्व अनुवादों और मौलिक प्रयोगों के रूप में उपन्यास की रचना होने लगी थी। इस तथ्य का अन्वेषण नहीं किया गया है। चौथे अध्याय में कई पूर्ण-अपूर्ण ज्ञात अज्ञात रचनाओं का परिचय दिया गया है, जो हिन्दी उपन्यास का विकास क्रम, खासकर प्रारम्भिक उपन्यास का विकास क्रम जानने के लिए उपयोगी है।

हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक दशक भारतेंदु-काल के अन्तर्गत आता है उसकी अपनी विशिष्टता और अपनी देन है। उसके ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए उसके लिए पांचवां अध्याय सुरक्षित कर दिया गया है। काल सीमा परीक्षागुरु (१८८२) और चन्द्रकान्ता (१८९१) के आधार पर निर्धारित की गई है क्योंकि प्रथम से हिन्दी उपन्यास की परम्परा आरम्भ होती है और द्वितीय के प्रकाशन से उसमें नव परिवर्तन होता है। प० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा निर्धारित प्रथम उत्थान का काल (१८८८-९३) भी लगभग यही है।

किशोरीलाल गोस्वामी देवकीनन्दन खत्री और गोपालराम गहमरी एक पर उन्नीसवीं सदी में और दूसरा पर बीसवीं सदी में रखकर खड़े हैं। ये आलोच्यकाल के श्रेष्ठ और सामान्य लेखक हैं। हिन्दी उपन्यास के इतिहास में इनका स्थान चतुरसेन शास्त्री भगवतीचरण वर्मा और इलाचन्द्र जोशी जैसे लेखकों से अधिक ऊंचा है। ये विशिष्ट काल के ही नहीं प्रमुख धाराओं के भी प्रतिनिधि हैं। इन्होंने हिन्दी उपन्यास को नया स्तर और आयाम प्रदान किया है उसी प्रकार जिस प्रकार प्रेमचन्द जैनेन्द्र और यशपाल ने किया है। ये अपने-अपने क्षेत्र और अपने युग की अद्वितीय प्रतिभाएँ हैं। इनमें से प्रत्येक ने उपन्यास की जिस परम्परा का प्रवर्तन प्रतिनिधित्व और पोषण किया है वह उनके बाद भी जीवित रहा और उसमें कई यशस्वी लेखक हुए।

व्यक्ति परम्परा का वाहक होता है और परम्परा व्यक्ति में जीवित रहती है। इसलिए विशिष्ट लेखक का अध्ययन प्रकारान्तर से परम्परा का अध्ययन है। गोस्वामी, खत्री और गहमरी के कृतित्व और कला की मीमांसा के बिना हिन्दी-उपन्यास की उपलब्धि का सही मूल्यांकन सम्भव नहीं है। छठे, सातवें और आठवें अध्यायों में इनका विशेष अध्ययन किया गया है। इनके जीवन वृत्त का उपयोग उसी सीमा तक किया गया है जहाँ तक वह इनकी रचनाओं की व्याख्या में सहायक होता है। इनके पारिवारिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवेश में इनके जीवन और रचनाओं में सम्बन्ध स्थापित किया गया है। जीवनी पर ज्यादा जोर देने से आलोचना दब जाती है।

अनेक महान लेखकों के बावजूद हिन्दी उपन्यास के इतिहास में व्यक्ति की अपेक्षा प्रवृत्ति का अधिक महत्व है। यह बात आलोच्यकाल के सम्बन्ध में विशेष रूप से सत्य है। साधारणतः यह धारणा प्रचलित रही है कि इस काल में मूलधन के नाम पर केवल तिलस्मी ऐयारी उपन्यास हैं अन्यथा जो कुछ है वह बंगला और अंग्रेजी का उधार या जूठन है। प्रबन्ध में मौलिक और अनूदित रचनाओं पर समान रूप से विचार किया गया है ताकि सत्य पर प्रकाश पड़े और हिन्दी उपन्यास के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का उद्घाटन हो। मौलिक उपन्यास की विविध धाराओं का विकास दिखाने में उनके उद्गम तक जाने का प्रयास किया गया है और सामान्य विशेषताओं एवं प्रतिनिधि रचनाओं पर विशेष दृष्टि रखी गई है। सामाजिक उपन्यास की धारा की प्रधानता ध्यान में रखकर उसका पृथक विवेचन नवें अध्याय में किया गया है। और उसमें उपन्यास लेखिकाओं के अंशदान का आकलन विशेष रूप से किया गया है।

अन्य धाराओं का भी अपना महत्व है और लोकप्रियता की दृष्टि से तो वे अतिरिक्त सहानुभूति की अपेक्षा रखती हैं। उनकी समीक्षा दसवें अध्याय में की गई है।

ग्यारहवां अध्याय हिन्दी और अन्य भाषाओं के उपन्यास का सम्बन्ध दिखाते हुए समकालीन भारतीय उपन्यास की एकता तथा हिन्दी और बंगला उपन्यासों की विभिन्नता स्पष्ट करता है।

बारहवें अध्याय में यह दिखाया गया है कि उपन्यास के रूप विधान में लिखित और अलिखित साहित्य का क्या योगदान रहा है। यह अध्याय

प्रबन्ध का प्रमुख साहित्यिक पृष्ठाधार है।

उपन्यास के वास्तविक पाठक साधारण जन होते हैं। नये लेखक लेखकों के लेखक हैं पुराने लेखक पाठकों के लेखक थे। विवेच्य काल में लेखकों और पाठकों में जो सम्पर्क था वह आज नहीं है। इस काल के उपन्यास का कोई भी अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक जिनके लिए वह लिखा गया उन्हें ध्यान में न रखा जाय। तेरहवें अध्याय में इस तथ्य पर ध्यान दिया गया है।

अंतिम अध्याय में विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन विश्व उपन्यास के संदर्भ में किया गया है।

विषय के प्रतिपादन में पृष्ठभूमि और परम्परा पर विशेष ध्यान दिया गया है तथापि यह चेष्टा की गई है कि उसका कोई पक्ष अछूता न रहे। शास्त्रीय ऐतिहासिक व्याख्यात्मक एवं समाजशास्त्रीय आलोचनादर्शों का आश्रय लेते हुए प्रवृत्ति लेखक और रचना पर समान दृष्टि रखी गई है। प्रयास यह रहा है कि अनुशीलन में तथ्य और तत्त्व का समन्वय हो।

इस विवेचन-पद्धति से ज्ञान क्षितिज का विस्तार कहाँ तक होता है इसका आभास अध्यायों के उक्त विवरण से मिलता है। यदि इससे हमारे साहित्य और संस्कृति के सजीव अंग उपन्यास का अध्ययन कुछ भी आगे बढ़ सका तो संतोष की बात होगी। हिन्दी में अभी तक उसके सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण नहीं हुआ है न ही उसकी समीक्षा समृद्ध हुई है। विवेच्य काल पर विशेष ध्यान रखकर उपन्यास के आलोचनात्मक साहित्य का सर्वेक्षण कर लेना अनावश्यक नहीं होगा।

उपन्यास विषयक आलोचना

उपन्यास साहित्य की नई उपज होते हुए भी काव्य और नाटक का रंग फीका कर चुका है पर काव्य और नाटक की आलोचना में उसकी आलोचना का स्तर ऊंचा नहीं है। इसका एक कारण तो यह है कि वह अपेक्षया नया है। दूसरे वह बहुत दिनों तक साहित्य जगत में उपेक्षित रहा। फिर उसे मनोविनोद की वस्तु मानने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि उसे गंभीर अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि काव्य और नाटक की भारतीय परम्परा हिन्दी में अक्षुण्ण है किन्तु उपन्यास पश्चिम की देन है। अतः उसके लिए भारतीय साहित्य शास्त्र उपयोगी नहीं

हो सका । पाश्चात्य साहित्य की परख के लिए पाश्चात्य आलोचना का मानदड उपयुक्त है यद्यपि उसकी भी कुछ सीमाए हैं । उपन्यास का रूप इतना भ्रमनशील है कि उसे सुनिश्चित और सदृढ नियमो के बधन म आबद्ध करना कठिन है ।

पत्र-पत्रिकाओ का अशदान

उपन्यास विषयक आलोचना का सूत्रपात पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित निबधो से हुआ । हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका' (जुलाई १८८१) का नाटक का उपन्यास शीर्षक लघु लेख उपन्यास पर विचार करने का प्रथम प्रयास है प० बालकृष्ण भट्ट का उपन्यास (हिन्दी प्रदीप जनवरी १८८२) एक उपन्यासकार द्वारा उपन्यास पर लिखित पहला आलोचनात्मक निबन्ध है जिसमे विचार की निष्पक्षता और विवेचन की मौलिकता है। भट्टजी की मान्यता है कि उपन्यास अथवा ही भाषा का एक अग है ।

उपन्यास पर सामान्यत लिखित ऐसे निबधो के बाद वर्तमान शता दी के आरम्भ म बम्बई कलकत्ता और काशी के कुछ प्रा तो म कुछ विशिष्ट उपन्यासो का लेकर साहित्यिक विवाद हुआ जो अन्तप्रान म समालोचना का रूप धारण करने लगा । वेंकटेश्वर समाचार और भारतमित्र न देवकी नदन खत्री की कथावस्तु का असभवता और अश्लीलता पर निमम आ ाप किया । समालोचक ने खत्रीजी की ऐयारी के साथ साथ किशोरीलाल गोस्वामी की रसिकता का उपहास किया । सुदर्शन सपादक माधव प्रसाद मिश्र न खत्रीजी के आलोचको का प्रबल प्रतिवाद करते हुए उनक पक्ष म जो कुछ लिखा उसस उपन्यास के अनेक अगों पर प्रकाश पडा । उनके विचार से उप न्यास का मुख्य गुण विचित्र घटना है ।

उपन्यास के साथ ही उसकी आलोचना का विकास होता गया । महावीर प्रसाद द्विवेदी के सपादन-काल के उपरान्त सरस्वती उपन्यास विषयक उत्कृष्ट निबध बराबर निकलते रहे । द्विवेदीजी न स्वय उपन्यास रहस्य ('सरस्वती १९२२) म उपन्यासकार के सामाजिक दायित्व पर बल देकर लिखा कि 'उपन्यास जातीय जीवन का मुकुर होना चाहिये । प्रेम चन्द के दो निबन्ध 'उपन्यास रचना (माधुरी २७अक्टूबर १९२२) और उपन्यास' (साहित्य-समालोचक, १९२५) किसी पुस्तक मे सग्रहीत नहीं

हुए हैं। प्रथम निबन्ध उपन्यास का विशद तात्विक विवेचन और दूसरे में हिन्दी उपन्यास विकास की संक्षिप्त रूप रेखा है।

पत्रों में पुस्तक परिचय के रूप में भी उपन्यास की समीक्षा की जाती थी। समीक्षक प्राय सम्पादक होते थे। वे किसी कृति के गुण-दोष का उल्लेख कर देना आवश्यक समझते थे और घटनाओं की अस्वाभाविकता और भाषा की अशुद्धि पर पैनी दृष्टि रखते थे। उपन्यास को कला की अपेक्षा उपयोगिता की कसौटी पर परखना उन्हें प्रिय था।

जब साहित्य जगत में उपन्यास की महत्ता प्रतिष्ठित हुई, पत्र पत्रिकाओं में उसकी चर्चा विशेष रूप से होने लगी। साहित्य सन्देश और 'आलोचना' के उपन्यास विशेषांक क्रमश १९४० और १९५४ में निकले। प्रथम विशेषांक में देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त कुछ उपन्यास लेखकों के पत्र भी हैं। आलोचना' के विशेषांक में नन्ददुलारे वाजपेयी विजयशंकर मल्ल, विश्वम्भर मानव बच्चन सिंह और नरोत्तम नागर के निबन्धों को छोड़कर शेष जितने निबन्ध हैं उन्हें दुबारा पढ़ने की जरूरत नहीं। आचार्य वाजपेयी ने प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यास पर एक सूक्ष्म दृष्टि डाली है और प्रो० मल्ल ने उसका साहित्यिक मूल्यांकन सामाजिक परिपार्श्व में किया है। बच्चनजी ने उपन्यास और मध्यवर्ग के विकास में सम्बन्ध दिखाकर नवीन स्थापना की है। नागरजी के फुटपाथ के उपन्यास में तिलिस्मी ऐयारी, जासूसी और साहसिक उपन्यासों की विकास रेखा है।

निबन्ध-संग्रह

आलोच्यकाल ने अध्ययन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की लेखमाला में संकलित गोपालराम गहमरी का नाटक और उपन्यास (प्रथम हि० सा० स० कार्य विवरण दूसरा भाग) और लक्ष्मण गोविन्द आठले का हिन्दी भाषा में उपन्यास' (सप्तम हि० सा० स० लेखमाला १९१७) उल्लेखनीय हैं। गहमरीजी ने सैद्धान्तिक और आठलेजी ने ऐतिहासिक पक्ष पर प्रकाश डाला है। डा० नगेन्द्र ने अपने छोटे किन्तु सुन्दर निबन्ध हिन्दी उपन्यास '(विचार और अनुभूति') में स्वप्न के माध्यम से प्रतिनिधि उपन्यासकारों द्वारा अपनी कृतियों पर विचार प्रकट करवाया है। आधुनिक साहित्य के ममज्ञ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य (१९५०)

और नया साहित्य : नये प्रश्न (१९५५) में आधुनिक उपन्यास की अनेक समस्याओं का विवेचन कर उसकी आलोचना को नया आयाम प्रदान किया। विशिष्ट कृतियों एवं कृतिकारों के अनुशीलन में उनके स्वतन्त्र चिन्तन एवं व्यापक दृष्टिकोण की छाप है। आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के हिन्दी उपन्यास (हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ) से उसकी प्रवृत्तियों को समझने में जो सहायता मिलती है वह इस विषय पर लिखित किसी एक पुस्तक से कदाचित ही मिलेगी।

साहित्येतिहास

आलोच्यकालीन उपन्यास के मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामशंकर शुक्ल, कृष्णशंकर शुक्ल, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्रीकृष्ण लाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास उपादेय हैं। मिश्रबन्धु विनोद अमूल्य आकर ग्रंथ है। रचनात्मक समीक्षा के पिता आचार्य शुक्ल की अभिरुचि या सहानुभूति उपन्यास की ओर नहीं थी पर उसके सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उसका एक एक शब्द अर्थपूर्ण है। स्वयं उपन्यास लेखक होकर भी हरिऔध जी उसका विस्तृत विवेचन नहीं कर सके तथापि उनके प्रतिपादन में मौलिकता है। डा० रसाल ने अपने ढंग से उपन्यास लेखकों का परिचय दिया है। पं० कृष्णशंकर शुक्ल की मीमांसा में सूक्ष्मता के साथ साथ स्पष्टता है। डा० वार्ष्णेय ने उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध के उपन्यास के विषय और रूप विधान का अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० लाल ने १९००-२५ के उपन्यास के कला रूप, कथा शैली और कोटि क्रम का विकास विलक्षण रीति से दिखाया है। डा० वार्ष्णेय में वैज्ञानिक तटस्थता है, डा० लाल में विश्लेषणात्मक आग्रह। शोध में दोनों का समान महत्त्व है। आधुनिक उपन्यास के सम्बन्ध में जो कुछ कहना आवश्यक था वह डा० द्विवेदी ने अपनी निर्मल शैली में कह दिया है। डा० रामविलास शर्मा का भारतेन्दु युग भी इतिहास है जिसमें न केवल भारतेंदुयुगीन उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है बल्कि उपन्यास के अध्ययन को नई दिशा मिली है।

विशिष्ट आलोचना

उपन्यास पर विशेष रूप से लिखे गए आलोचना ग्रंथों के नाम अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। रघुवीर सिंह का सप्तदीप (१९३८) इस प्रकार का प्रमुख ग्रंथ है जो प्रभावाभिव्यंजक होने के कारण आलोचनात्मक

मूल्य नहो रखना। तारा शंकरपाठक ने 'हिन्दी के सामाजिक उपन्यास (१९३९) मे आलोच्य काल के बाद के कुछ प्रतिनिधि उपन्यासकारो का परिचय दिया है। शिवनारायण लाल श्रीवास्तव ने हिन्दी उपन्यास' (१९४०) लिखकर सवप्रथम ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक आलोचना पद्धतियो का समन्वय किया और एक महान अभाव की पूर्ति की। विनोदशकर व्यास की उपन्यास-कला' (१९४१) विदेशी और भारतीय उपन्यास का परिचय देती है। गगा प्रसाद पाण्डय का 'हिन्दी कथा साहित्य' (१९५१) कतिपय कथाकारो के साहित्य की निणयात्मक आलोचना है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कथा साहित्य के प्रथम आधुनिक समालोचक हैं। आधुनिक कथासाहित्य' (१९५४) उनके पुराने-नये निबधो का सकलन है, जिसम व्यक्तिगत रुचि से गम्भीर समीक्षा मिल गई है। ब्रजरत्न दास ने हिन्दी उपन्यास साहित्य (१९५६) म उपन्यास-कला और प्राचीन कथा-परम्परा पर विस्तार से विचार करते हुए हिन्दी उपन्यास का ऐतिहासिक दष्टि से अध्ययन किया है और प्रारम्भिक उपन्यासकारो को अपेक्षित पृष्ठ दिए हैं। त्रिभवन सिंह का हिन्दी उपन्यास और यथायवाद (१९५५) एक अभिनव प्रयास है।

सिद्धान्त

उपन्यास के सद्धान्तिक प्रश्न पर पहली पुस्तक प० अम्बिकादत्त व्यास की गद्यकाव्य मीमासा (१८९७) है। विद्वान लेखक ने नई दष्टि से पुरानी वस्तु का देखा इसलिए उन्ह सस्कृत गद्यकाव्य मे कथारस नही मिला और पुरानी दष्टि से नई वस्तु को देखा इसलिए उनके अनुसार उपन्यास के मूल भेद छनचास अबुद छ करोड एकतालीस लाख अठानवे हजार चार सौ हुए। प० जगन्नाथ प्रसाद भानु को काव्य प्रभाकर' (१९०९) म गद्यकाव्य की कोटि म उपन्यास को रखना अनुचित लगा क्योकि उसम 'नीति एव उपदेशजनक हितवार्ता नही थी। डा० श्यामसुदर दास ने साहित्यालोचन' (१९२२) म उपन्यास का वर्गीकरण और विवेचन हडसन के ऐन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ लिटरेचर' के अनुसार किया पर कही-कही मौलिक एव विचारोत्तजक व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी परिभाषा सारगर्भित है 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है। डा० रामकुमार वर्मा की साहित्य समालोचना (१९३८) अपने विषय पर अपने ढग की रचना है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का 'वाङ्मय विमश' (१९४२) समीक्षा शास्त्र म एक नूतन अध्याय जोडता है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का

और नया साहित्य नये प्रश्न (१९५५) में आधुनिक उपन्यास की अनेक समस्याओं का विवेचन कर उसकी आलोचना को नया आयाम प्रदान किया। विशिष्ट कृतियों एवं कृतिकारों के अनुशीलन में उनके स्वतन्त्र चिन्तन एवं व्यापक दृष्टिकोण की छाप है। आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के हिन्दी उपन्यास (हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ) से उसकी प्रवृत्तियों को समझने में जो सहायता मिलती है वह इस विषय पर लिखित किसी एक पुस्तक से कदाचित ही मिलेगी।

साहित्येतिहास

आलोच्यकालीन उपन्यास के मिश्रबन्धु रामचन्द्र शुक्ल अयोध्यासिंह उपाध्याय रामशंकर शुक्ल कृष्णशंकर शुक्ल लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय श्रीकृष्ण लाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास उपादेय हैं। मिश्रबन्धु विनोद अमूल्य आकर ग्रन्थ है। रचनात्मक समीक्षा के पिता आचार्य शुक्ल की अभिरुचि या सहानुभूति उपन्यास की ओर नहीं थी पर उसके सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उसका एक एक शब्द अर्थपूर्ण है। स्वयं उपन्यास लेखक होकर भी हरिऔध जी उसका विस्तृत विवेचन नहीं कर सके तथापि उनके प्रतिपादन में मौलिकता है। डा० रसाल ने अपने ढंग से उपन्यास लेखकों का परिचय दिया है। पं० कृष्णशंकर शुक्ल की मीमांसा में सूक्ष्मता के साथ साथ स्पष्टता है। डा० वार्ष्णेय ने उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध के उपन्यास के विषय और रूप विधान का अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० लाल ने १९०० ४५ के उपन्यास के कला रूप कथा शैली और कोटि क्रम का विकास विलक्षण रीति से दिखाया है। डा० वार्ष्णेय में वैज्ञानिक तटस्थता है डा० लाल में विश्लेषणात्मक आग्रह शोध में दोनों का समान महत्त्व है। आधुनिक उपन्यास के सम्बन्ध में जो कुछ कहना आवश्यक था वह डा० द्विवेदी ने अपनी निर्मल शैली में कह दिया है। डा० रामविलास शर्मा का भारतेन्दु युग भी इतिहास है जिसमें न केवल भारतेन्दुयुगीन उपन्यास की विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है बल्कि उपन्यास के अध्ययन को नई दिशा मिली है।

विशिष्ट आलोचना

उपन्यास पर विशेष रूप से लिखे गए आलोचना ग्रन्थों के नाम अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। रघुवीर सिंह का सप्तदीप (१९३८) इस प्रकार का प्रमुख ग्रन्थ है जो प्रभावाभिव्यंजक होने के कारण आलोचनात्मक

मूल्य नहीं रखता। डा० शंकरलाल ने 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' (१९७९) में आरम्भ काल के बाद के कुछ प्रतिनिधि उपन्यासकारों का परिचय दिया है। शिवनारायण लाल श्रीवास्तव ने 'हिन्दी उपन्यास' (१९५०) लिखकर सर्वप्रथम ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक आलोचना-पद्धतियों का समन्वय किया और एक महान अभाव की पूर्ति की। विनोदशंकर व्यास ने 'उपन्यास-कला' (१९६१) लिखा और भारतीय उपन्यास का परिचय दिया है। गंगाप्रसाद पाण्डेय का 'हिन्दी कथा-साहित्य' (१९५१) कतिपय कथाकारों के साहित्य की निर्णयात्मक आलोचना है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कथा-साहित्य के प्रथम आधुनिक समालोचक हैं। 'आधुनिक कथासाहित्य' (१९५८) उनके पुरातन-नव निबंधों का संकलन है जिसमें व्यक्तिगत रुचि व गम्भीर मर्म का मिश्रण है। ब्रजरत्न दास ने 'हिन्दी-उपन्यास-साहित्य' (१९४६) में उपन्यास-कला और प्राचीन कथा-परम्परा पर विस्तार से विचार करते हुए हिन्दी-उपन्यास का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया है और प्रारम्भिक उपन्यासकारों के अज्ञात पृष्ठ दिए हैं। त्रिभुवन सिंह का 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' (१९५५) एक अभिनव प्रयास है।

सिद्धान्त

उपन्यास के सैद्धान्तिक पक्ष पर पहली पुस्तक पं० अम्बिकादत्त व्यास का 'गद्यकाव्य मीमांसा' (१८९७) है। विद्वान् लेखक ने नई दृष्टि से पुरानी वस्तु को देखा इसलिए उन्हें सम्यक् पहचान में सफलता नहीं मिली और पुरानी दृष्टि से नई वस्तु को देखा क्योंकि उनके अनुसार उपन्यास के कुल भेद उपन्यास अब तक छः करोड़ एकासठ लाख अट्ठानवे हज़ार, चार सौ हुए। पं० जगन्नाथप्रसाद 'भानु' का 'काव्य प्रभाकर' (१९०९) में गद्यकाव्य की दृष्टि में उपन्यास की रचना अनुचित रही क्योंकि उसमें नीति एवं उपदेशात्मक शिक्षाएँ नहीं थीं। डा० श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' (१९२२) में उपन्यास का वर्गीकरण और विवेचन हडसन के 'ऐन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी आफ लिटरेचर' के अनुसार किया पर कहीं-कहीं मौलिक एवं विचारोत्तेजक व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी परिभाषा सारगर्भित है 'उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है'। डा० रामकुमार वर्मा का 'साहित्य-समालोचना' (१९३८) काव्य विषय पर काव्य रूप की रचना है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का 'वाङ्मय विमर्श' (१९४२) समीक्षा शास्त्र में एक नूतन अध्याय जोड़ता है। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तों का

समन्वय किया है और बताया है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों का ढर्रा भारतीय था। प० गुलाबराय के काव्य के रूप (१९४७) में सद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से उपन्यास का जैसा सांगोपांग विवेचन किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी दृष्टि में उपन्यास जीवन का चित्र है, प्रतिबिम्ब नहीं। प्रेमचन्द ने उपन्यास के साथ ही उसकी आलोचना लिखना आरम्भ किया और दोनों को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। कुछ विचार (१९३९) और उसके परिवर्धित संस्करण साहित्य का उद्देश्य (१९५४) में संकलित एतद्विषयक निबन्ध लोकप्रिय साहित्य पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के फल हैं।

उपन्यास सम्बन्धी आलोचना की उपलब्धि उसके अभाव से ढक गई है। पत्र पत्रिकाओं की समीक्षा उपन्यास के कुछ अंगों तक सीमित रही है। निबन्धों में उसकी अनेक महत्वपूर्ण समस्याएं अछूती रह गई हैं। साहित्येतिहासों में उसे समुचित स्थान नहीं मिला है। विद्वान आलोचकों ने उसे अपना क्षेत्र नहीं बनाया है। सद्धान्तिक दृष्टि से मौलिक उद्भावनाएं कम हुई हैं पुरानी और नई सामग्री को एकत्र कर देने की प्रवृत्ति प्रबल रही है। अंग्रेजी में लुबोक लिविस और लिडल ने उपन्यास के मूल्यांकन के लिए क्रमश कथा कहने की पद्धति शब्दों के प्रयोग और विशिष्ट अवतरणों के उद्धरण को आधार माना है।[13] हिन्दी में न तो ऐसे प्रतिमानों की स्थापना हुई है और न उनके आधार पर विश्लेषण और निरूपण किया गया है। परिणाम और गुण दोनों की दृष्टि से उसकी उपन्यास विषयक आलोचना में न्यूनता है।

यह अभाव गर्व का विषय नहीं है तो लज्जा और निराशा का कारण भी नहीं है। अब जिस गति से शोध और समीक्षा की अभिवृद्धि हो रही है वह आशा दिलाती है। उपन्यास की विशिष्ट प्रवृत्ति लेखक और शिल्प विधान के सम्बन्ध में कुछ प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। इनके जो अंश प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रतिपाद्य से सम्बद्ध हैं वे अपेक्षित ज्ञान की वृद्धि में सहायक नहीं होते। उदाहरण के लिए डा० राजेश्वर गुरु प्रेमचन्द एक अध्ययन में प्रेमचन्द की रचनाओं की सही तिथि भी नहीं दे सके। डा० देवराज उपाध्याय ने उपन्यास की उत्पत्ति के सम्बन्ध में राल्फ फाक्स के मत को ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है पर आधार का संकेत या उल्लेख नहीं किया है।[14]

जब प्रस्तुत प्रबन्ध का टंकन समाप्तप्राय था डा० कैलाशप्रकाश का 'प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास' प्रकाश में आया। उसके सम्बन्ध में यहाँ केवल

यह कहने का अवकाश है कि उसमें विषय पर गम्भीरता से विचार किया गया है पर सीमित काल के अध्ययन में जो व्यापकता होनी चाहिए वह नहीं है। डा० प्रकाश ने 'केवल प्रवृत्ति विशेष की प्रतिनिधि रचनाओं तक अपने अध्ययन को सीमित रखा है'। उन्होंने अनुवादों को जो प्रेमचन्द-पूर्व उपन्यास के अभिन्न अंग हैं जानबूझ कर छोड़ दिया है। परन्तु कुछ अनूदित रचनाओं (मिश्रबन्धु वीरमणि गोपालराम गहमरी खूनी कौन है') को मौलिक समझ कर स्थान दिया है। भावात्मक उपन्यास की धारा—जो किसी भी दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास की कम महत्वपूर्ण धारा नहीं है—उनके विवेचन का विषय नहीं बनी। पराक्रम 'पन्ना' सौन्दर्योपासक' प्रेमा विमाता' और 'भोजपुर की ठगी' हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास हैं। उनके बिना उनके युग का कोई भी अध्ययन पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। किन्तु डा० प्रकाश ने उनका नामोल्लेख भी नहीं किया। उन्होंने प्रतिनिधि रचनाओं के नाम पर निबन्धों (राधादत्त 'उमा' स्वर्ग में महासभा' भारतेंदु स्वर्ग में महासभा (?) का अधिवेशन') और कहानियों (पुरानी हन्नों का चरित्र' श्रीरत्नाकर सुत') का भी उपन्यास में समावेश कर दी कोशिश की है। वह अपने विवेच्य काल की उल्लेखनीय रचनाओं की उपेक्षा कर बाद की अनेक रचनाओं (मदन द्विवेदी कल्याणी दुर्गाप्रसाद खत्री रक्त मंडल प्रतिशोध' लाल पंजा' आदि) को भी हो कई पृष्ठ देने का लोभ संवरण नहीं कर सकीं। इस प्रकार एक उपेक्षित काल के प्रति न्याय नहीं किया गया।

टिप्पणिया

१– प्रसाद सियारामशरण गुप्त हजारीप्रसाद द्विवेदी और राहुल साकृत्यायन उल्लखनीय हैं ।

२– इतिहासो और आलोचना–ग्रथों म उसके प्रकाशन–काल का बहुधा उल्लेख नही किया है और यदि किया गया है तो प्रामाणिक रूप म नही । डा० इन्द्रनाथ मदान क प्रमचन्द एक विवेचन म १९१४ डा० राजेश्वर गुरु क प्रमचन्द एक अध्ययन मे १९१६ और ब्रजरत्न दास के 'हि दी उप यास साहित्य म १९१९ है ।

३– शिवनारायणलाल श्रीवास्तव ने हिन्दी उप यास म प्रमा का प्रकाशन काल १९०५ तथा डा० राजेश्वर गरु न प्रमचद एक अध्ययन म १९ २ बताया है पर उसकी रचना १९०५ म हुई और प्रकाशन १९०७ मे । रचना काल के लिए आजकल (फरवरी १९५२) म रघवीर सिंह को लिखे गय प्रमचद क पत्र का उद्धरण दष्ट य है ।

४– जलाई १९०७ पृ० २

५– मैंने विधवा का विवाह करा के हिन्दू नारी को आदश से गिरा दिया था । उस वक्त जवानी की उम्र थी और सधार की प्रवत्ति जोरो पर थी । उस रूप म उस पुस्तक को नही दखना चाहता था । इसलिए मैंने कथा म उलट फर करक लिख डाला ।

—रघुवीर सिंह को लिखा गया उक्त पत्र

६– सेवासदन क निकलते न निकलते प्रमचन्द जी एकदम विकन्र हो गये हार्डी और टाला आदि की कक्ष म रखे जान लगे ।

—शिलीमुख प्रेमचद की कला सरस्वती फरवरी १९२९ प० १३८

७– हि दी साहित्य प० ३२४

८– दखिय मरी पहली रचना (कफन)

९– सातवें अध्याय म तुलनात्मक विवचन किया गया है ।

१०– प्रमचद का कोइ परम्परा विरासत म नही मिली ।

—डा० इन्द्रनाथ मदान प्रमचद एक विवेचन प० १२१

वस्तुत आधुनिक हिन्दी–उपन्यास की परम्परा का सूत्रपात प्रमचद स ही होता है ।

—शिवदान सिंह चौहान हि दी–गद्य–साहित्य प० ६६

११– प्रेमचद के पूर्व जितने उपन्यास हैं वे मूक हैं, उनके पात्र शायद ही कही वार्तालाप करते दिखलाये गये हो।'

—डा० देवराज उपाध्याय 'आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान पृ० ८९

डा० उपाध्याय को मनोवैज्ञानिक उपन्यास के सम्बन्ध म जो कहना चाहिए था वह उन्होने प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासो के सम्बन्ध म कह दिया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास वास्तव म मूक होते हैं क्योकि उनके पात्र या तो आप ही आप बातें करते है या चुपचाप सोचते हैं। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासो म केवल छबीलेलाल गोस्वामी की जाविश्री म वार्तालाप का जितना अश है उतना शायद ही किसी हिन्दी उपन्यास म हो देखिये अध्याय १२।

१२–यान्त शर्मा न हिन्दी के उपन्यासकार (१९५१) म किस तरह शिव नारायणलाल श्रीवास्तव के हिन्दी उपन्यास (१९५०) की प्रतिलिपि कर दी है यह एक उदाहरण स स्पष्ट हो जायगा। श्रीवास्तव जी न गहमराजी की समीक्षा करते हुए लिखा है फिलिप आपनहम शरलाक हाम्स एडगर वल्स आदि उपन्यासकारो न इन विषयो पर बडा मनो रजक रचनायें की। ब्लेक सीरीज, सिक्स पेंस सीरीज फोर पेंस सीराज आदि कई पुस्तक मालाए जासूसी उपन्यासो के लिए ही निकाली गई। (पृ० ७३)। शर्मा जी लिखते हैं फिलिप आपनहम शरलाक हाम्स एडगर वेलस आदि उपन्यासकारो न जासूसी विषयो पर जसी मनोरजक रचनाए की थी गहमराजी न भी उसी प्रणाली को अपनाया। जिस प्रकार अग्रेजी म ब्लेक सीरीज सिक्स पेंस सीरीज फोर पेंस सीरीज इत्यादि प्रकाशित हुई उसी प्रकार हिन्दी म भी रचनाए प्रकाशित की जान लगी (पृ० ८)। शरलाक होम्स उपन्यासकार नही उपन्यास का नाम है जिसका लेखक कानन डायल है, इस विचित्र बात का लिखन म एक आलोचक स भूल हो गई तो क्या दूसरा आलोचक उस दुहराय बिना नही रह सकता ?

१ – ग्राफ्ट आफ फिक्शन द फिक्शन एण्ड द रीडिंग पब्लिक तथा ए ट्रिटाइज आन द नावेल द्रष्टव्य हैं।

14– True its roots go back very far to Trimalchio s Banquet

to Duphnis and Chole perhaps to further to Herodotus

— द नोवेल एण्ड द पीपुल पृ० ५१

'उसकी जड बहुत पुरानी और गहरी है। यूरोपीय साहित्य म इसकी जडें ट्रिमालचिया क वाकेट डाफनिस वलाफ तथा हिरोडटस तक खीचकर लाई जा सकती हैं।

— आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ० १६

———

१

पूर्व का कथासाहित्य

क—शिष्ट कथाएँ

कथा कहानी साहित्य का अत्यन्त व्यापक और लोकरंजक अंग है। वीरगाथा महाकाव्य आख्यानक काव्य सभी प्रारम्भिक कथा के पद्यबद्ध नमूने हैं। मध्यकालीन आख्यानक काव्य और रोमानी—ऐतिहासिक उपन्यासों के वस्तु विन्यास में बहुत समानता है। जायसी को एक ऐसा उपन्यासकार कहा जा सकता है जो पद्य में लिखता हो। समय और सुविधा के अनुसार कथासाहित्य पद्य या गद्य का वसन धारण करता रहा है। आलोचकों के मत से भले ही उसका स्वाभाविक वसन गद्य हो कथाप्रेमियों को तो कथारस चाहिए वह पद्य से छनकर आए या गद्य से। हिन्दी साहित्य के आदि मध्य काल में कविता का साम्राज्य था। गद्यकथा के अभाव में 'मधुमालती', मृगावती आदि पढ़कर कथा कहानी पठन की पिपासा शान्त कर ली जाती थी।[1] वस्तुतः प्रेमाख्यानक काव्य में काव्य तत्त्व की अपेक्षा कथा तत्त्व का प्राधान्य था।

प्राचीन गद्य

कविता के युग में भी दक्खिनी, ब्रजभाषा और राजस्थानी में गद्य की स्वतन्त्र सत्ता थी।[2] उसका व्यवहार उपयोगी साहित्य के अतिरिक्त ललित साहित्य के लिए होता था। दक्खिनी गद्य की परम्परा चौदहवीं सदी से आरम्भ होती है।[3] उसमें खड़ी बोली गद्यकथा का प्राचीनतम रूप उपलब्ध है, यद्यपि वह फारसी लिपि में है। अरबी फारसी से अनूदित सूफी-साहित्य में

दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कथाओं का उपयोग किया गया है। फारसी के आधार पर लिखा गया वजही का सबरस (१६२५) अपूर्व रूपक कथा है। उसमें अक्ल के लड़के दिल और इश्क की लड़की हुस्न का प्रेम वर्णित है। पात्र सूक्ष्म होकर भी व्यक्तिगत नहीं हैं। भाषा की सादगी और मुहावरों की मिठास ने शैली में जान डाल दी है। छोटे छोटे तुकान्त वाक्य नावक का तीर की तरह हृदय में चुभ जाते हैं। कहानी और उसकी कला पर मुग्ध होना पड़ता है

एक शहर था शहर का नाउ सीस्तान। इस सीस्तान के बादशाह का नाउ अक्ल। दीन व दुनिया का तमाम काम उससे चलता उसके हुक्म बाज जर्रा कइ नइ हिलता। इसके फरमाये पर जिनो चले हर दो जहान में वे भले। दुनिया में खूब कहवाये चार लोकों में इज्जत पाये।[१]

व्रजभाषा काव्यभाषा है तथापि उसमें सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक गद्य का धारावाहिक अस्तित्व दो रूपों में है कथा वार्ता और टीका। वार्ता साहित्य व्रजभाषा गद्यकथा का प्रारम्भिक रूप है। उसमें भक्तों और सतों की निजधरी कथाएं हैं। श्री गोकुलनाथ कथित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (सत्रहवीं शताब्दी) का उद्देश्य श्री विट्ठलनाथ गोसाईं की महिमा और उनके सेवकों के चरित्र पर प्रकाश डालना है पर उसमें ऐहिकतापरक कथा के अनेक तत्व हैं। हर वार्ता चरित्रनायक के जीवन का एक खंड चित्र है जिसमें उसके व्यक्तित्व का मानवीय रूप झलकता है और वार्ताओं के अनुरूप ही पात्रों में विविधता है। कुछ समाज के उच्च स्तर से आए हैं कुछ निम्न स्तर से कुछ भले हैं कुछ बुरे कुछ सामान्य हैं कुछ विशिष्ट। वैष्णव की बेटी और वेश्या की बेटी दो विरक्त और दो ठग जीवनदास ब्राह्मण और माधुरीदास माली सभी सजीव मुखर और विश्वसनीय हैं। कथासाहित्य में सामाजिक जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में ही मिल सका। जब पतिता को सत्पथ पर लाया जाता है यथार्थ आदर्श की ओर झुक जाता है। बोलचाल की भाषा में कोमलता स्वाभाविकता और कौशल के साथ कहने का ढंग रुचिकर है। वार्ता संख्या ६३ उदाहरणार्थ उद्धृत है

सो वे साहूकार के बेटा की बहू सूरत गाम में रहेती हती वाका रूप बहोत सुन्दर हतो और व सती हती एक दिन अपने घर में कवाड लगाय के न्हाती हती सो एक म्लेच्छ पादशाह को नौकर घोडा पर चढ़के जातो हतो

सो वा की नजर वा स्त्री पे जाय गई और देख के कामातुर भयो तब चोखा मुसाफ के बाने घर के भीतर जाय पहुँचो सो वे स्त्री का। महाती हुती ताको हाथ पकर लियो तब वह स्त्री बोली तुमभी तसली साहेब, ऐसो मैं तुमारी चाकर हु तुम कहो जैसे करूँगी अबी मोकूँ घर। पेहेरे ऐसे देखो के तुमने यह रफेरफ प्रसन्न भयो और कही जो तुम कपड़ा पेहेर के हमारे पास आओ ये कहेके वा स्त्री को हाथ छोड़ दियो वा स्त्री ने कपड़ा पेहेर के और वा रफेरफ के मुख में राख लगायो गार के एक कोठा में कवाड़ देके चली गई तब रफेरफ सरकार के घर गयो

अठारहवीं शताब्दी से संस्कृत से कथा आख्यान के अनुवाद उपलब्ध होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किसी अज्ञात लेखक के 'नासिकेतोपाख्यान' (संवत् १७६० के उपरांत) का उल्लेख किया है। लल्लूलाल ने 'हितोपदेश' का आधार लेकर 'राजनीति' (१८०२) और पद्मपुराण के आधार पर 'माधव विलास' (१८१७) की रचना की। 'माधव विलास' का कथा भाग गद्य में और कथन भाग पद्य में है लेकिन गद्य में भी पद्य की छटा है। राजकुमार माधव और राजकुमारी सुलोचना के प्रेम और विवाह, मिलन, और विरह की कहानी रस से भरी है।

राजस्थानी गद्य की प्राचीनता और संपन्नता हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु है। उसके दो प्रमुख प्रकार हैं 'ख्यात' और 'बात'। ख्यात का प्रयोग इतिहास के लिए, बात का कथा के लिए होता है। कुछ बातें गद्यपद्यमय हैं, कुछ गद्यमय। गद्यपद्यमय बात का पुराना नमूना 'गोरा बादल री बात' (११२४) है। उसका विषय इतिहास प्रसिद्ध है। मारवाड़ के कविराजा बांकी दास की बातों की संख्या २८०० बताई जाती है।[1] बात साहित्य लोक साहित्य की विशेषताओं से पूर्ण है। कथावस्तु की दृष्टि से उसके चार भेद किये जा सकते हैं ऐतिहासिक, पौराणिक, प्रेमाख्यानक और कल्पित। अनूदित रचनाओं में जनहरराम वैरागी का 'पंचाख्यान' (१८४७) उल्लेख योग्य है जो विश्व प्रसिद्ध संस्कृत कथा 'पंचतंत्र' का रूपांतर है।

इस प्रकार मध्यकाल में पद्य में ही नहीं, गद्य में भी कथाएँ लिखी गईं। पद्य प्रमुख साहित्यिक माध्यम था, इसलिए कथाओं के लिए पद्य अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग तो हुआ ही, गद्यबद्ध कथाएँ भी पद्य में रूपान्तरित की गईं।[2] जब काव्य ही साहित्य का पर्याय था, यह स्वाभाविक था कि जो पद्यबद्ध हो वही साहित्य में परिगणित किया जाय। पटियाला दरबार के कथावाचक

दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए कथाओं का उपयोग किया गया है। फारसी के आधार पर लिखा गया वजही का 'सबरस' (१६२८) अपूर्व रूपक कथा है। उसमें अक्ल के बेटे दिल और इश्क की लड़की हुस्न का प्रेम वर्णित है। पात्र सूक्ष्म होकर भी व्यक्तिगत नहीं हैं। भाषा की सादगी और मुहावरों की मिठास ने शैली में जान डाल दी है। छोटे छोटे तुकान्त वाक्य नाविक के तीर की तरह हृदय में चुभ जाते हैं। कहानी और उसकी कला पर मुग्ध होना पड़ता है :

एक शहर था शहर का नाउँ सीस्तान। इस सीस्तान के बादशाह का नाउँ अक्ल। दीन व दुनिया का तमाम काम उससे चलता। उसके हुक्म बाज जर्रा कई-नई हिलता। इसके फरमाये पर जिनो चले हर दो जहान में वे भले। दुनिया में खूब कहवाये, चार लोकों में इज्जत पाये।[४]

ब्रजभाषा काव्यभाषा है तथापि उसमें सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक गद्य का धारावाहिक अस्तित्व दो रूपों में है : कथा-वार्ता और टीका। वार्ता साहित्य ब्रजभाषा गद्यकथा का प्रारम्भिक रूप है। उसमें भक्तों और सन्तों की निजंधरी कथाएँ हैं। श्री गोकुलनाथ कथित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (सत्रहवीं शताब्दी) का उद्देश्य श्री विट्ठलनाथ गोसाईं की महिमा और उनके सेवकों के चरित्र पर प्रकाश डालना है पर उसमें ऐहिकतापरक कथा के अनेक तत्व हैं। हर वार्ता चरित्रनायक के जीवन का एक खंड चित्र है जिसमें उसके व्यक्तित्व का मानवीय रूप झलकता है और वार्ताओं के अनुरूप ही पात्रों में विविधता है। कुछ समाज के उच्च स्तर से आए हैं कुछ निम्न स्तर से, कुछ भले हैं कुछ बुरे, कुछ सामान्य हैं कुछ विशिष्ट। वैष्णव की बेटी और वेश्या की बेटी, दो विरक्त और दो ठग, जीवनदास ब्राह्मण और माधुरीदास माली सभी सजीव, मुखर और विश्वसनीय हैं। कथासाहित्य में सामाजिक जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में ही मिल सका। जब पतितों को सत्पथ पर लाया जाता है यथार्थ आदर्श की ओर झुक जाता है। बोलचाल की भाषा में कोमलता स्वाभाविकता और कौशल के साथ कहने का ढंग रुचिकर है। वार्ता संख्या ६३ उदाहरणार्थ उद्धृत है :

सो वे साहूकार के बेटा की बहू सूरत गाम में रहेती हती वाको रूप बहोत सुन्दर हतो और वे सती हती एक दिन अपने घर में कवाड़ लगाय के नहाती हती सो एक म्लेच्छ पादशाह को नौकर घोड़ा पर बैठके जातो हतो

सा वा की नजर वा स्त्री के ऊपर गई और देख वे कामातुर भया तब घोडा नगाय के वाके घर के भीतर जाय पडयो सो वे स्त्री नग्न नहाती हती वाको हाथ पकर लियो जब वह स्त्री वाली इतनी तसतो कहेकु जेहा मैं तुमारी चाकर हूं तुम कहो जस करूंगी अबी मोकु वस्त्र पहरे ल्व देवो ये सुनके वह म्लेच्छ प्रसन्न भया और कही जा तुम कपडा पेहेर के हमारे संग चला य कहके वा स्त्री को हाथ छाड दिया वा स्त्री नें कपडा पेहेर के और वा म्लच्छ के मुख में एक तमाचा मार के एक कोठा म कवाड दके चली गई तब म्लेच्छ सरमाय के घर गया

अठारहवी शताब्दी म संस्कृत के कथा आख्यान के अनुवाद उपलब्ध हान हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल न किसी अज्ञात लेखक क नासिकेतोपाख्यान (संवत १७६० क उपरांत) का उल्लख किया है।[5] लल्लूलाल न हितोपदेश का आश्रय लेकर राजनीति' (१८०२) और पद्मपुराण के आधार पर माधव विलास (१८१७) का रचना की। माधव विलास का कथा भाग गद्य म और वर्णन भाग पद्य म है लेकिन गद्य म भी पद्य की छटा है। राजकुमार माधव और राजकुमारी सुलोचना क प्रेम और विवाह, मिलन, और विरह की कहानी रस स भरी है।

राजस्थानी गद्य की प्राचीनता और संपन्नता हिंदी क लिए गौरव की वस्तु है। उसक दो प्रमुख प्रकार हैं ख्यात और बात'। ख्यात का प्रयोग इतिहास के लिए बात का कथा के लिए होता है। कुछ बातें गद्यपद्यमय हैं कुछ गद्यमय। गद्यपद्यमय बात का पुराना नमूना गोरा बादल री बात (१६२४) है। उसका विषय इतिहास प्रसिद्ध है। मारवाड के कविराजा बाकी दास की बातों की सख्या २८०० बताई जाती है।[6] बात साहित्य लोक साहित्य की विशेषताओं से पूर्ण है। कथावस्तु की दृष्टि स उसक चार भद किय जा सकते हैं ऐतिहासिक, पौराणिक प्रमाख्यानक और कल्पित। अनूदित रचनाओं म फतहराम वरागी का पचाख्यान (१८४७) उल्लख योग्य है जो विश्व प्रसिद्ध संस्कृत कथा पचतंत्र का रूपांतर है।

इस प्रकार मध्यकाल में पद्य मे ही नहीं गद्य म भी कथाए लिखी गइ। पद्य प्रमुख साहित्यिक माध्यम था, इसलिए कथाओ क लिए गद्य अपेक्षा कृत कम प्रयोग तो हुआ ही गद्यबद्ध कथाए भी पद्य में रूपायित की गइ।[7] जब काव्य ही साहित्य का पर्याय था, यह स्वाभाविक था कि जो पद्यबद्ध हो वही साहित्य म परिगणित किया जाय। पटियाला दरबार के कथावाचक

रामप्रसाद 'निरंजनी' खडीबोली के प्रथम प्रौढ गद्य लेखक माने जाते हैं। अत अठारहवीं शताब्दी में मौखिक कथा-वार्ता के लिए खड़ी बोली गद्य का व्यवहार अवश्य होता होगा। कथावाचकों ने कथालेखकों के लिए जमीन तयार की यद्यपि वह जमीन कुछ समय के लिए खाली रही।

नवीन गद्य

नई हिन्दी में कविता आने से पहले कहानी सुनाने की शक्ति आई। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में जिन चार प्रथम पुरुषों ने खड़ी बोली गद्य के आधुनिक रूप का उत्थापन किया उनमें तीन कथा साहित्य के रचयिता थे। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि आधुनिक गद्य परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।[6] वास्तविकता यह है कि उसका प्रवर्तन कथासाहित्य से हुआ। इंशा की रानी केतकी की कहानी (१८००-१८०८) सदल मिश्र का नासिकेतो पाख्यान (१८०३) और लल्लूलाल के प्रेमसागर (१८१०) नवीन गद्य में लिखित पुरानी ढंग का अमर कथाएं हैं। रानी केतकी की कहानी मौलिक कृति होने के कारण कथासाहित्य के विकासात्मक अध्ययन में विशेष उपादेय है। सम्भवत यह खडी बोली गद्य की पहली मौलिक कहानी ही नहीं, पहली मौलिक प्रेम कहानी भी है। यह भी सम्भव है कि पहले पहल गद्यसाहित्य में कहानी शब्द का प्रयोग इंशा ने किया हो। उनका ऐतिहासिक महत्व इसलिए और बढ़ जाता है कि जहाँ सदल मिश्र और लल्लूलाल ने सर्वविद्यानिधान दानवान महाप्रधान श्री महाराज जान गिलकस्त साहब के आज्ञानुसार अनुवाद किया वहाँ उन्होंने आत्म प्ररणा से मौलिक प्रयास किया जैसा कि उन्होंने आरम्भ में ही लिखा है एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले। अस्तु वे ठेठ हिन्दी में सचेतन होकर मौलिक कहानी लिखने वाले प्रथम लेखक हैं।

कहानी आदि से अन्त तक लोककथा के रस में डूबी हुई है। एक दिन कुंवर उदयभान हिरनी के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ नाम की एक अमराई में पहुँचता है। वहाँ रानी केतकी अपनी सहेलियों के साथ झूले पर सावन गा रही है। रानी के जी में कुंवर की चाह घर कर लेती है। कुंवर को अमराइयों का आसरा मिल जाता है। रात में मिलन की वेला आती है दोनों में परिचय होता है वादों के वादे होते हैं और अंगूठियों के हेरफेर के बाद बिछुडन होती है। उदयभान के पिता सूरजभान केतकी के पिता

जगतपरकाश के पास विवाह का प्रस्ताव भेजते है जो मजूर नही होता। दोनो म लडाई छिड जाती है। जगतपरकास के गुरू महेदरगिर कलाश पहाड स आकर कुवर और उसके माँ-बाप को हरिन-हरिनी बना देते है और जगतपरकास को एक बघम्बर और भभूत दे जात हैं। बघम्बर की करामात ऐसी है कि उसका एक रोगटा आग पर रखा गया और योगी महदर गिर आ धमके। रहा भभूत सो इसलिए है जो काई इस अजन करे वह सबका देख और उसे कोई न देख जो चाहे सो कर। सो रानी केतकी आँख मिचोवल खेलन के बहाने मां स भभूत माँग लेता है और आँखो म लगाकर कुवर की खोज म निकल पडती है। महेदर गिर आकर उनका पता लगाते हैं और राजा इदर की सहायता स कुवर और उसक माँ-बाप को भी खोज निकालत है और उनका रूप पूववत बना दत हैं। कुवर और केतकी की शादी बड धूमधाम से होती है।

यह कहानी पढ़ना क्या है चांदनी रात म फूलो के दन म घूमना है। इशा शुरु म ही कह देते हैं, इसलिये किस ढब से बढ चलता हू और अपन फूल की पखडी जस होठो से किस किस रूप म फूल उगलता हूं। फिर तो उनकी वाणी स फूल झडते जाते हैं। विवाह का प्रस्ताव लान वाले ब्राह्मण पर फूल की चगर फेंकी जाती है। मह दर गिर पर साने रूपे के फूल निछावर किय जाते हैं। कवर की चिटठी रानी के पास कागज के नील लिफाफ म नही फूल की पखडी म लिपटी आती है। शादी की खुशियाली म झीलो म कुसम और टेसू और हरसिंगार सज जात है और नदियो में इतन फूल बहा दिये जाते है कि नदियाँ जस फूल की बहियाँ हैं यह समझा जाय। नायक-नायिका केवडा और केतकी हैं तो नायिका की सहेली का नाम मदनबान और मालिन का नाम फूलकली होना ही चाहिए। उदय भान और कतकी की यह कोमल कहानी फूल की भाषा म लिखी गई फूलो की कहानी तो नहीं है?

'नासिकेतोपाख्यान' का मूलाधार कठोपनिषद है। इसम राजकुमारी च द्रावती की नाक स नासिकेत की उत्पत्ति और यमलोक-यात्रा का रोचक वणन है। प्रेमसागर चतुभुज मिश्र की ब्रजभाषा पद्यरचना का अनुवाद है। इसम भागवत के दशम स्कध की कथा है। इनका विषय धार्मिक है रानी केतकी की कहानी का लौकिक। अलौकिक और अति प्राकृत तत्व तीनों म है। प्रेमसागर म शुकदेव जी राजा परीक्षित को कथा सुनात हैं

ग्रन्थ और फारसी गुलिस्ता के भावानुवाद हैं। इनकी नीति कथाए प्रसिद्ध हैं। बाबू नवीनचन्द्र राय का लक्ष्मी सरस्वती सम्वाद (१८६९) भी दो बहनो के सम्वाद के रूप में मनोहर नीतिकथाओं का संग्रह है। अंगरेजी में प्रचलित कथाएँ भारतीय साँचे में ढाल दी गई हैं। बादशाह ल्यिर को उज्जन नगर का धनपति बनिया बना दिया गया है। कहने का ढंग सीधा सादा है। पहली कहानी इस तरह शुरू होती है किसी गाँव में जयपाल नामक एक खत्री रहता था। उसके घर में एक लड़का और दो लड़कियाँ थी। बाबू नवीनचन्द्र राय की भाँति स्त्रियो के उपयोग के लिए भारतेन्दु ने मदालसोपाख्यान (१८७६) लिखकर बालिकाओ में मुफ्त बाँट दिया। यह प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान है। उसकी भाषा साफ सुथरा है।

माँ बाप का बहू बेटे को देखकर ऐसा कलेजा ठंडा हुआ जस किसी को कोई सम्पत्ति मिले। राजा के सारे राज्य म आनन्द फल गया और घर घर बधाइयाँ होने लगी।

सितारेहिन्द ने राजा भोज का सपना' (१८५८) वामा मनरंजन (१८५९) वीरसिंह का वत्तात (?) और लड़को की कहानी (१८७६) की रचना की। आचार्य शुक्ल न उनकी कहानियो मे आलसियो का कोड़ा का भी उल्लेख किया है पर वह कहानी नही है। मौलिक रचना के रूप म प्रसिद्ध राजा भोज का सपना मुखपृष्ठ पर मिस सी० एम० टकर के राजाज डीम का अनुवाद बताया गया है। भारतेंदु युग की स्वप्न कथा की परम्परा शायद इसी स आरम्भ होती है। अनदित होकर भी भाषा की दृष्टि से यह बहुत महत्व रखता है। यह ठठ हिन्दी का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है यद्यपि इसके तुकान्त वाक्य फारसी ढग के हैं और रानी केतकी की कहानी की याद दिलाते हैं जसे सना उसकी समुद्र की तरग का नमूना और खजाना उसका सोने चांदी और रत्नो के खान से भी दूना। शेष रचनाए मौलिक जान पड़ती हैं। वामा मनरंजन म स्त्रियो के लिए दस विभिन्न की आदर्श महिलाओ की सत्रह कथाए संकलित हैं। उसकी भाषा सरल संस्कृतनिष्ठ है विदभ नगर के राजा भीमसेन की कन्या भवनमोहिनी दमयन्ती का रूप और गुण सारे भारतवर्ष म प्रख्यात हो रहा था। वीरसिंह का वत्तात गुटका (तीसरा खंड १८८६) म संकलित है। इसमे एक कल्पित कथा के माध्यम से शिक्षा दी गयी है। लड़को की कहानी छोटी छोटी तेरह रोचक बालोपयोगी कहानियो का संग्रह है। उसका न हो आकार और सुबोध

भाषा मन मोहने के लिए काफी है। राजा साहब ने जिस भाषा की वकालत 'इतिहास तिमिरनाशक' में आगे चलकर की उससे उनकी कहानियाँ अछूती हैं। हिंदी गद्य-शैली के विकास में इनका स्थान ऐतिहासिक महत्व का है।

जैसे नई शिक्षा के प्रचार के लिए बाल-कथा साहित्य की रचना हुई, वैसे ही ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ईसाई कथा साहित्य की। इलाहाबाद से प्रकाशित 'पुष्पमालिका' (१८६८) कथामाला (१८७७) 'उपमा रत्नावली' (१८७९) दृष्टांत कथाओं के संग्रह हैं। पात्र भारतीय भी हैं और विदेशी भी। भाषा परिनिष्ठित है। इस प्रकार के साहित्य का भारतीय जनता के बीच प्रचार अवश्य हुआ पर इसे लोकप्रियता कदाचित ही मिली होगी। ईसाइयों का उद्देश्य स्पष्ट था, कथा कहानी तो एक बहाना था। उन्होंने बड़ी चतुरता से अपने धार्मिक साहित्य को भारतीय रूप प्रदान कर भारतीय पाठक के मनोनुकूल बनाया था।

शिष्ट कथायें और उपन्यास

उपन्यास के पूर्व के शिष्ट कथासाहित्य में उपन्यास की कई आवश्यकताओं की पूर्ति हुई। उसमें कहानी कहने की कला का विकास हुआ। फलतः उपन्यास का एक सरल पर मौलिक समस्या हल हो गई। उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन भी है और शिक्षा भी। उससे इस दुहरे कार्य की सिद्धि हुई। इंशा, सदलमिश्र, सितारेहिंद, नवीनचंद्र राय आदि की रचनाओं ने सरल निराडंबर रूप में कथारसज्ञ की संभावना उत्पन्न की। रानी केतकी की कहानी' का यह स्थल किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास के स्थल से कम मार्मिक नहीं है :

जब रात साँय-साँय बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगाकर यों कहा—अरी ओ तूने कुछ सुना है ? मेरा जी उस पर आ गया है और किसी डौल से थम नहीं सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब होनी हो सो हो सिर रहता रहे, जाता जाय। मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल। तेरे पाँव पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए।

दैनिक जीवन की भाषा में कही गई रानी केतकी की बातें उसकी मुद्रा भाव स्वर आदि को मिलाकर एक पूर्ण जीवन्त चित्र उपस्थित कर देती हैं। 'नासिकेतोपाख्यान' आत्मचरित शैली में लिखित पहली कथा है। उसमें व्यक्ति

और वातावरण का यथार्थ चित्रण है। रूपवती का यह रूप कितना मोहक है

पहिले मास में तो उस कन्या को कुछ अधिक सा देह में रूप उपजा और दूसरे में गर्भ का लक्षण जानने में आया। तीसरे पियरा मुंह हो गया। चौथे में रोए अलग अलग होने लगे पाँचवें में कुच व नितंब ऐसे भारी हुए कि जिनके भार से अलसाकर किसी से कुछ बातचीत न कर सकती।

इसी प्रकार यमलोक और नरक का स्पष्ट वर्णन किया गया है। पूर्ववर्ती लेखकों ने गद्य में अभिव्यक्ति की क्षमता भरकर उपन्यासकारों का काम आसान कर दिया।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता की उक्त वार्ता में साहूकार की बहू मधुर प्रलोभन से मार्गभ्रष्ट नहीं होती है बल्कि अपने सतीत्व की रक्षा चतुरता के साथ करती है। हरिऔधजी लिखित अधखिला फूल में देवहूती और किशोरीलाल गोस्वामी की 'चपला' में सौदामिनी पर इसी तरह बलात्कार किया जाता है और वे ऐसी ही चतुरता से बचने का उपाय करती हैं। हरिऔध जी और किशोरीलाल गोस्वामी गोकुलनाथ जी से प्रभावित हुए या नहीं यह प्रश्न निरर्थक है। ध्यान देने की यह बात है कि देवहूती और सौदामिनी साहूकार की बहू की परम्परा में हैं। ये सकारात्मक (पोजिटिव) चरित्र भारत की एक ही मिट्टी से बने हैं। देवहूती और सौदामिनी के पीछे युगों का सांस्कृतिक इतिहास है। बुद्धि फलोदय में शिक्षा और अशिक्षा का परिणाम दिखाने के लिए भले बुरे लड़कों में भिन्नता दिखाई गई है। शील भिन्नता आरम्भिक उपन्यासों के चरित्र चित्रण की एक विशिष्टता रही है। बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि उपन्यास बुरे और भले पात्रों के चरित्र का बराबर से मुकाबिला करके अंत में भले पात्र को उपन्यास के किस्से का मुख्य नायक बनाकर शिक्षा देता है।[11]

आधुनिक युग के आरम्भ में ही कथासाहित्य की प्रभावशीलता और महत्ता स्वीकृत हुई और उसे शिक्षा नीति और धर्म का माध्यम बनाया गया। यदि ऐसा नहीं होता तो उपन्यास की ओर लोग स्वभावतः आकर्षित नहीं होते और उसके आविर्भाव में विलंब होता। शिक्षोपयोगी और धार्मिक कथा *ग्रंथों की भाँति आदि उपन्यास उपदेश के भार से दबे हुए हैं।*

खड़ी बोली गद्यकथा की भाषा एक प्रकार से अनुवादों की भाषा है पर उसमें हिंदी की आत्मा और शक्तिशाली रूप छिपा हुआ है। ब्रजभाषा और राजस्थानी में नवीन विषय और विचार को व्यक्त करने की सामर्थ्य

नही थी। उनके पद पर खड़ी बोली का प्रतिष्ठित होना स्वाभाविक था। अनुवादकों और मौलिक लेखकों ने उसे कथासाहित्य के उपयुक्त बनाने में योग दिया।

उपन्यास नवल गद्यकथा है इसलिये जब तक गद्यकथा का माध्यम नही बनता तब तक उसका उदय नही होता। कथासाहित्य में पद्य को निर्वासित कर गद्य की प्रतिष्ठा करना एक दिन की बात नही थी। 'रानी केतकी की कहानी' नासिकेतोपाख्यान और प्रेमसागर में पद्य के लिए स्थान सुरक्षित रहा। परवर्ती रचनाओं में भी कहीं न कहीं पद्य के दर्शन हो ही जाते हैं। विलक्षणता की बात यह है कि उसका अंश अधिक नही है और जो है वह अवसरानुकूल उपदेश और भाव विशेष की अभिव्यक्ति तथा किसी घटना की सूचना के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा कभी-कभी जो गद्य में कहा गया है उसे ही कविता में दुहरा दिया गया है। कथा का अंश गद्य में ही है। दूसरे शब्दों में गद्य का प्रयोग सामान्यत और पद्य का विशेषत हुआ है। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक आते आते कहानी पद्य का सहारा लिये बिना चलने लगी और गद्य उसका वाहन स्वीकार कर लिया गया। सितारेहिंद तक गद्य में काव्य का आभास था किन्तु उसमें सहज सरल ढंग से कथा सुनाने की क्षमता आ गई थी और काव्य-तत्व के ह्रास से जो कमी होने लगी उसकी पूर्ति वर्णन शैली करने लगी। उस समय प्राचीन गद्यकथा का अधिकांश प्रकाश में नही आया था अत उसके प्रभाव का क्षेत्र सीमित रहा होगा। जो साहित्य जितना ही लोकप्रसिद्ध होता है वह उतना ही प्रभावशाली होता है। इस दृष्टि से लोकप्रिय कथायें शिष्ट कथाओं की अपेक्षा अधिक मूल्य रखती हैं।

ख— लोकप्रिय कथायें

उपन्यास के उदय के समय और उसके पहले संस्कृत और फारसी की मनोरंजक कथायें लोगों में प्रिय और प्रचलित थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से उनके हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित होने लगे थे। सिंहासन बत्तीसी बैताल पचीसी हातिमताई चहारदरवेश आदि लोकप्रिय किस्से छोटे बड़े उपन्यासों का काम करते थे। इनसे हमारे आदि उपन्यासकार परिचित थे।[12] फारसी की जो पुस्तकें नागरी में नही आई थीं उनकी जानकारी भी उन्हें थी। फारसी-उर्दू उन दिनों हिन्दू शिक्षित समाज में प्रचलित थी। सदियों से हिन्दू मुसलमान के बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान हो रहा था।[13] उन्होंने

एक दूसरे की कथा कहानी का अपना लिया था और दो भिन्न कहानियों से नई कहानी भी गढ़ ली थी। शायद इस कथासाहित्य का व्यापक प्रचार देख कर फोर्ट विलियम कालेज के अंग्रेज अधिकारियों ने इसका रूपांतर और प्रकाशन करवाना आरम्भ किया और इसके महत्व एवं प्रभाव को बढ़ा दिया। मध्यकाल में गद्यकथा पद्य में बाँध दी गई थी। छपाई की सुविधा होने पर पद्यकथा का गद्य रूपांतर होने लगा। लोक परम्परा में जीवित कथायें भी मुद्रित होकर धीरे धीरे पाठकों के सामने आने लगी। मुद्रण यन्त्र ने लेखकों और पाठकों के लिए मनोरञ्जन की सामग्री सुलभ कर दी और लोकरुचि में परिवर्तन उपस्थित किया। उन्नीसवीं सदी से फिर कथासाहित्य का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

लोकप्रिय कथाओं को दो कोटियों में रखा जा सकता है भारतीय और अभारतीय। यह भेद अध्ययन की सुविधा के लिये प्रेरणा और प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया गया है। भारतीय कथायें मुख्यतः संस्कृत से निःसृत हैं। फारसी कथायें भारत में भी लिखी गई पर उनका वातावरण अभारतीय है और उनमें भारतीय कथाओं की रूढ़ियाँ नहीं है इसलिए उन्हें अभारतीय कहा गया है। दोनों का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय कथाये

सिंहासन बत्तीसी — संस्कृत सिंहासनद्वात्रिंशिका का पद्यानुवाद सुंदर दास ने ब्रजभाषा में किया था। ब्रजभाषा से लल्लूलाल की सहायता से जवां ने १८०१ में हिंदुस्तानी में अनुवाद किया। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक इसके चार संस्करण निकल चुके थे और इसकी शैली हिंदी के निकट आ चुकी थी। यह बत्तीस कहानियों का संग्रह है जो राजा विक्रम के सिंहासन की बत्तीस पुतलियाँ राजा भोज को सुनाती है। राजा भोज विक्रम के सिंहासन पर बैठना चाहते हैं पर पुतलियाँ विक्रम को ही सिंहासन पर बैठने योग्य सिद्ध करने के लिए उनकी महानता का वर्णन करती है। आदर्श राजा के नाम पर गढ़ी गई कल्पित कहानियों का यह उत्कृष्ट निदर्शन है। कथायें अनहोनी और पात्र अपरिचित हैं फिर भी उनमें वास्तविकता का आभास है।

बैताल पचीसी संस्कृत वेतालपंचविंशतिका का पद्यानुवाद सूरति मिश्र ने ब्रजभाषा में किया था। लल्लूलाल की सहायता से विला ने

हिंदुस्तानी' में १८०१ में अनुवाद किया। उन्नीसवीं शताब्दी तक इसके छ संस्करण निकल चुके थे और भाषा में परिवर्तन हो चुका था। एक संस्करण 'विक्रम विलास' के नाम से भी निकला। यह पचीस कहानियों का संग्रह है। एक योगी के कहने पर राजा विक्रम पेड़ पर एक लटकते हुए वैताल को लाने जाता है और लाने के समय राह में बोल देता है इसलिये वैताल फिर पेड़ पर जा लटकता है। पचीस बार के विफल प्रयास के बाद राजा वैताल को योगी के निकट लाकर पाता है कि योगी उसका शत्रु है। हर बार वैताल राह में राजा को एक कहानी सुनाता है। 'कहानी में कहानी' सजाने का यह अच्छा उदाहरण है। आरम्भ संवाद और विकास वर्णन से होता है। कल्पना और बुद्धि दोनों को उत्तेजित करने वाली वस्तु मिलती है। पुरुष प्रगल्भ प्रणय निवेदन करते हैं स्त्रियाँ अवैध यौन-सम्बंध स्थापित करती है और उनका विस्मय निर्माता सूक्तियाँ सुनाता चलता है। राजा और राजकुमारी साधु और चोर सेठ और साहूकार सभी मानवीय और जीवन के प्रति आस्थावान हैं।

तोता कहानी—संस्कृत 'शुक सप्तति' का अनुवाद फारसी में कादिरी ने 'तूतीनामा' (१७०४) नाम से और हैदरी ने उर्दू में 'तोता कहानी' (१८२८) नाम से किया था। एक अज्ञात लेखक ने हिंदी में १८६० में 'शुक बहत्तरी' नाम से अनुवाद किया किन्तु मूल संस्कृत से किया या फारसी उर्दू से यह नहीं कहा जा सकता। इसमें विदग्ध चूडामणि नामक तोते द्वारा कही हुई बहत्तर कहानियाँ हैं। सौदागर मदन के परदेश चले जाने पर उसकी रूपवती पत्नी प्रभावती प्रतिदिन परपुरुष के साथ रमण करने के लिए जाना चाहती है कि तोता उसे कथा सुनाकर रोक लेता है। बहत्तर दिन तक सुनाई गई इन कहानियों में यह खोलकर बता दिया गया है कि परपुरुष से प्रेम करने के लिए विवाहित स्त्रियाँ किस तरह छलछंद से काम लेती हैं। स्त्री और सर्पिणी को एक ही श्रेणी में रखा गया है। इसकी नायिका प्रभावती जितनी ही सुन्दर है उतनी ही चंचला है। नारी के प्रति ऐसा दृष्टिकोण उर्दू गुजारे दास्तान में भी मिलता है। जहाँ तक भौतिक जीवन के यथार्थ चित्रण का सम्बन्ध है 'शुक बहत्तरी' बोकेशियो के डेकामेरन की समकक्ष है। इसकी विशिष्टता यह है कि इसमें नीतिश्लोक भी जोड़ दिये गये हैं।

संस्कृत के घटना प्रधान कथा संग्रह के अतिरिक्त कई भाव प्रधान आख्यान भी लिखे गये। प्रथम कोटि की रचनाओं में मूलकथा गौण हो जाती

है प्रासंगिक कथाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है और वे सूक्ष्म सूत्र में सबद्ध रहती हैं तथा घटनाओं का प्रवाह अखंड गति से आगे बढ़ता है। दूसरे प्रकार की रचनाओं में आदि से अंत तक एक कथा की प्रधानता रहती है और बीच-बीच में मार्मिक परिस्थितियों एवं मनोहर दृश्यों का वर्णन रहता है। स्थापत्य की दृष्टि से ये उपन्यास के निकट हैं। इनमें न तो नैतिक आग्रह का आरोप है न लोकचातुरी सिखाने की चेष्टा ही अपितु मानवीय मनोविकारों का सरल स्पष्ट स्वरूप है। पात्र आदर्श वीर और प्रेमी होते हुए भी दुर्बलताओं के शिकार हैं। उनका रागात्मक सम्बन्ध अतिप्राकृत शक्तियों से न होकर प्राकृतिक रमणीयता से है। भाव-प्रधान आख्यान में लौकिक प्रेमाख्यान की विशेषताएं निहित हैं जैसा कि निम्नलिखित पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञात होता है।

माधोनल कामकन्दला (१८०१)—इसकी रचना गिलक्राइस्ट के निर्देश में लल्लूलाल की सहायता से मोतीराम कवीश्वर के ब्रजभाषा ग्रन्थ के आधार पर हिंदुस्तानी में की। पूर्व में पद्य प्रेमाख्यान के रूप में कई कवियों ने इसकी रचना की थी। इसका मूलाधार संभवतः सिंहासनद्वात्रिंशिका की इक्कीसवीं कथा है। इसमें सुन्दरी कामकंदला के प्रति माधवानल के प्रगल्भ प्रेम का चित्ताकर्षक वर्णन है। माधवानल विशिष्टता सम्पन्न व्यक्ति है। वह स्वयं सुन्दर है और सौन्दर्य का उपासक है। उसका गुण उसके लिए अभिशाप बन जाता है। अनेक कष्ट झेलने के बाद वह प्रयसी को पत्नी बनाने में सफल होता है।

नल प्रसंग (१८६०) गोपाचन्द भरथरी (१८६७) 'गोपीचन्द' (१८६८) किस्सा मृगावती (१८७६) और कहानी कला कामी (१८७९)—पहली पुस्तक अनेक पुराण और महाभारत का सार लेकर रची गई है और दाऊजी अग्निहोत्री के यन्त्रालय (बनारस) में छपी है। यह नल दमयन्ती के अमर प्रेम की छोटी-सी कहानी है। दूसरी और तीसरी पुस्तकों के लेखक क्रमशः कुंवर लक्ष्मण सिंह और प० जयदत्त हैं। इनकी कथावस्तु प्रसिद्ध है और संभवतः मौखिक परम्परा से ली गई है। यामिनी भान लिखित किस्सा मृगावती कुतबन की इसी नाम की प्रेमगाथा का गद्य रूपान्तर प्रतीत होता है। श्यामलाल चक्रवर्ती लिखित अंतिम पुस्तक का मूलाधार संभवतः दक्खिनी कवि तहसीनुद्दीन की मसनवी है। इसमें कुंवर कामरूप और कलाकाम की प्रेमकथा है। आजिमगंज और पटने से क्रमशः प्रकाशित कहानी कला काम (१९०८ द्वि० सं०) और किस्सा कलाकाम (१९०७) पद्यबद्ध हैं।

प्रेम और साहसिकता से भरी अंतिम दो कहानियों के मूल रचयिता मुसल्मान हैं और इनमें फारसी कथा की रूढ़ियाँ हैं तथापि इनका स्वरूप भारतीय है।

छबीली भठियारी—इसका प्रकाशन १८८६ में आगरे में हुआ। यह पहले प्रकाशित हुआ या नहीं यह कहना कठिन है। लेखक का नाम भी नहीं दिया गया है। संभव है इसका स्रोत भी मौखिक लोककथा हो। दिल्ली का शाहजादा रमनशाह शिकार में जाते समय एक कुएँ पर छबीली भठियारी को देखकर प्रेमासक्त हो जाता है। वह अपनी स्त्री विचित्र कुँवरि के पास आँख पर पट्टी बाँध रहता है बाहर निकलने पर पट्टी खोल देता है और छबीली से मिलता है। विचित्र कुँवरि एक दिन गूजरी के भेष में उसकी प्रेमलीला देखने जाती है तो वह उस पर भी फिदा हो जाता है। धीरे धीरे वह सही रास्ते पर आता है और छबीली को मार डालता है। कहानी प्रतीकात्मक है। पट्टी बँधे रहने और खुलने का अर्थ उन्मुख होना और होश में आना है। नैतिकता को प्रतीक में प्रकट करने की रीति स्तुत्य है।

सारंगा सदाब्रज का वृत्तान्त—राजकुमारी सारंगा और कुँवर सदाब्रज की प्रेमकथा उत्तर भारत में अमर है। इसका आश्रय करके आख्यान काव्य भी लिखे गए हैं। गणेशलाल का एक गद्यपद्यमय रूपान्तर आगरे में १८८९ में प्रकाशित हुआ। गद्य खड़ी बोली में और पद्य ब्रजभाषा में है। पद्यमय संवाद सरस और स्पर्शी हैं। कहानी का सारांश यह है कि प्रेमिका के विवाहित होने पर भी प्रेमी उसे भूल नहीं पाता है और उससे मिलने के लिए कठिनाइयों का सामना करता है। सारंगा सदावृक्ष नाम से प्रचलित कथा में कुछ नवीनता है। प्रेमी को मालूम होता है कि उसकी प्रेमिका कल ससुराल जाएगी। वह प्रेमिका के कहने पर एक रात में उसकी राह में झोपड़ा डालकर साधु बन बैठता है। प्रेमिका ससुराल जाते समय साधु का दर्शन कर लेती है। इस प्रकार के मधुर प्रसंग पुस्तक में भरे हुए हैं।

लोकप्रिय कथाएँ विशुद्ध कथाएँ हैं। इन्हें पढ़ने से मालूम हो जाता है कि किस्से-कहानियों से कितना मजा मिलता है। इनमें कल्पना और सत्य मानव और अमानव इस तरह मिले हुए हैं कि इन्हें अलग करना कठिन है। ये वास्तविक जीवन से बिल्कुल दूर नहीं हैं और इनमें घटना-वैचित्र्य रहते हुए भी भाव विभूति है अतः ये रोमांचक होने के साथ साथ मनोरंजक हैं। म० प्रेम साहब [illegible] अभिन्न है। यही कारण है कि वह क्षण अनुभूति न होकर

प्रेरक शक्ति है और उसमें कुंठा न होकर प्रगल्भता है। बैताल पचीसी की छठी कहानी में एक धोबी देवी से प्रार्थना करता है कि सुंदरी धोबिन से उसका विवाह हो जाय तो वह अपना सिर अर्पित कर देगा। नायक नायिका नाना प्रकार की बाधाओं और व्यवधानों का सामना करते हुए मिलते हैं। उनका परिचय बहुधा प्रथम दर्शन से होता है और विवाह में परिणत होकर पूर्ण होता है। फलतः कथाएं सुखान्त होती हैं। इनमें मनुष्य की आदिम और सार्वभौमिक प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुई हैं अतः पात्र मानवीय और सजीव हैं। यहाँ सामाजिक मान्यता और नैतिक बंधन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है। परपुरुष या परस्त्री से प्रेम या अतिप्राकृत तथा मानवीय पात्रों में यौन सम्बन्ध सामान्य सामाजिक आचरण के उल्लंघन का उदाहरण है। इस प्रकार के पात्रों से पाठक अनजान में तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। उनमें वे अपने व्यक्तित्व के प्रच्छन्न रूप की छाया पाते हैं। इन कथाओं की लोकप्रियता का यह भी एक कारण है।

अभारतीय कथाएँ

भारतीय कथासाहित्य की परम्परा बहुत पुरानी है। उसका प्रवर्तन ईसा के पूर्व हो चुका था।[14] भारत में मुसलमानों के आगमन से उसका प्रवाह मन्द पड़ गया और अरबी फारसी कथाओं का प्रचार होने लगा। शहरजाद ने विष्णु शर्मा की जगह अपना सिक्का जमा लिया। विदेशी कथाओं के प्रचार प्रसार में मध्यकालीन किस्सागो फोर्ट विलियम कालेज और नवलकिशोर प्रेस ने विशेष सहायता पहुँचाई। किस्सागो का काम निकम्मे और विलासी बादशाहों, राजाओं और नवाबों को किस्से सुनाना था। मुगल दरबार में किस्सागोई खूब चमकी। जहाँ गंग कवि को एक छप्पय पर छत्तीस लाख रुपये न्योछावर किये गये वहाँ कथाकौशल के बिना कोई किस्सागो वाहवाही नहीं लूट सकता था। इसलिए कहानी एक कला बनी। फिर कला ने पेशे का रूप धारण किया। पेशेवर किस्सागो एक साथ ही कथाकार और अभिनेता की भूमिका अदा करते थे। हाथ के संचालन से स्वर के चढ़ाव उतार से चेहरे के हाव भाव से वे अपने आश्रयदाताओं के हृदय में हर्ष विस्मय भय विश्वास उत्पन्न कर उनका मन बहलाते थे। उनकी कहानियों में नाटकीयता और मनोरंजकता सहज ही आ गई। प्रस्तुत अध्याय में एक किस्सागो द्वारा लिखित रानी केतकी की कहानी को उद्धृत

पक्तियों म यही गुण है।

मुगल दरबार का देखादेखी राजपूत दरबारो म भी किस्सागोई का साहित्य बनता रहा।[15] और जब दिल्ली म पतगड क दिन आये तब किस्सागो नवाबो के दरबारा मे घोसला बनान लगे। फलत सामन्ती समाज म अरबी फारसी कथाओ का खूब चलन हुआ। इन कथाओ क केन्द्रबिन्दु राजा रानी थे। नवाबो और नरेशो न इनमे अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखा और इनका हार्दिक स्वागत किया। हिन्दू-मुसलमान दानो म इनका प्रचलन देखकर इन्हे सबोध भाषा मे प्रकाशित करन का प्रयत्न स्वाभाविक था। फोर्ट विलियम कालेज और नवलकिशोर प्रेस ने सरल उर्दू म इनका अनुवाद और प्रकाशन करवाया। कलकत्ता और लखनऊ उर्दू कहानी के जन्म स्थान हुए। लखनऊ की देखादेखी बम्बई मथुरा पटना सिटी और काशी क प्रकाशको न भी फारसी उर्दू किस्स कहानिया के भाषान्तर प्रकाशित किय। अभारतीय कथाए फारसी स उर्दू म फारसी उर्दू स हिन्दी मे आइ। ऐसा शायद ही कोई मनोरजक कथा हो जो उन्नीसवी सदी क अत तक नागरी म नहीं निकली हो। विशेष लोकप्रिय रचनाओ का परिचय नीचे दिया जाता है।

बागोबहार या बहारदरवेश'— यह उन किस्सो का सग्रह बताया जाता है जो अमीरखुसरो ने अपन गुरु निजामुद्दीन औलिया की बीमारी म मन-बहलाव के लिए सुनाय थे। इसका अनुवाद मीर अम्मन न उर्दू म किया जो १८०१ म प्रकाशित हुआ। १८८३ म प्रकाशित अपन हिन्दी अनुवाद म श्रीधर भटट ने बताया है कि उनसे पूव भी नागरी म पुस्तक निकली थी। नागरी म प्रथम प्रकाशन का काल ज्ञात नही हो सका है। इसम चार योगी अपने देशाटन की वार्ता बादशाह आजादबख्त का सुनाते हैं। कही कोई शाहजादी किसी गरीब जवान लडक पर फिदा हो जाती है कही परी शाह जादे को प्यार करने के लिए आसमान से उतर आती है। आपबीती-शैली म कही गई साहसिकता और प्रम की कहानियाँ मनोरजन क साथ साथ लौकिक रीति की शिक्षा प्रदान करती हैं।

हातिमताई— मूल फारसी स हैदरी न उर्दू म आराइशे महफिल (१८०२) नाम स अनुवाद किया। मीर मुन्शी लक्ष्मणदास का हातिमताई (१८५१) फारसी का हिन्दी अनुवाद है। दानवीर हातिम को आलम्बन बनाकर लिखी गई यह कथा प्रहेलिका-कथा का अच्छा नमूना है। एक

शाहजादा एक सौदागर की बेटी से शादी करना चाहता है। वह कहती है कि यदि शाहजादा उसके सात प्रश्नों का जवाब दे तो वह शादी कर सकती है। हातिम उस शाहजादे के लिए उन प्रश्नों का जवाब ढूंढने के सिलसिले में दूर दूर की यात्रा करता है। उसकी यात्रा का वर्णन सात कहानियों के रूप में किया गया है जिनमें प्रेम तिलस्म और जादू की घटनाएं भरी हुई हैं। रीछ की बेटी और मत्स्यक या हातिम से प्रेम करना चाहती हैं। जिन्न सांप बनकर आसमान से उतरता है और मनुष्य का रूप धारण कर सुन्दरियों में किसी को अपने लिए चुन लेता है। हरिण और सियार मनुष्य के समान बोलते हैं। स्त्रियां पुरुषों का वेश धारण करती हैं और नेवला भी मनुष्य बन जाता है। हातिम का सौ मन मब गटक जाना अशर्फियों से भरे कुएं का दिखलाई पड़ना कटे हुए सिरों का खिलखिला कर हंसना मामूली बातें हैं। हर किस्से का नायक ने दिया गया है जैसे पहला किस्सा हातम के जाने का और पहली रात बजा लाने का।

गुल सनोवर – यह हातिमताई से बहुत मिलता जुलता है। शाहजादी मेहर अंग्रज के पास एक प्रश्न है गुल ने सनोवर को क्या किया। जो इसका उत्तर देगा शाहजादी उससे विवाह करेगी। एक राजकुमार इस भेद का पता लगाने के लिए एक दूर शहर में जाता है जहां उसे गुल और उसकी बेवफा स्त्री की कहानी मालूम होती है। जीवराम भाट ने इस रहस्य मूलक कथा का हिन्दी रूपान्तर किया जिसका तीसरा संस्करण १८९२ में निकला।

किस्सा लैला मजनू –हैदरी ने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में खुसरो की मसनवी के आधार पर उर्दू में यह पुस्तक लिखी। उत्तरार्ध में देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी में लिखकर हरिप्रकाश यन्त्रालय से प्रकाशित कराया। अन्य लोकप्रचलित प्रेमाख्यानों की तरह इसमें भी दो विरहाकुल हृदयों का सुकुमार प्रेम वर्णित है पर इसकी अपनी विशेषताएं हैं। प्रेमी प्रेमिका परस्पर विरोधी परिवारों से आए हैं। उनका प्रेम सत्संग से अंकुरित हुआ है और विवाह में परिणत होते होते रह गया है। अश्रु में घुलकर प्रेम का आदर्श रूप निखर उठा है। खत्रीजी की अलंकारहीन भाषा शैली भाव को सहज संवेद्य बनाने में सफल हुई है।

मजहबे इश्क या किस्साए गुलबकावली – उर्दू में इस नाम से

फारसी 'किस्सए ताजुलमुलुक व गुल्बकावली' का अनुवाद १८१३ मे निहाल चंद लाहौरी ने किया। 'गुल्बकावली' नाम से हिन्दी अनुवाद १८६९ मे बनारस लाइट प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसमे ताजुलमुल्क के निर्वासन और गुल्बकावली से उसके प्रेम का वर्णन है। इस कथा का एक रूप ऐसा है जिस पर भारतीय रंग चढ़ा हुआ है। एक परम रूपवती राजकुमारी थी। एक दिन अपनी सहेलियों के साथ उसे आते देखकर रानी ने कहा कि बकावली (हंसो का झुंड) आ रही है। उस दिन से उस राजकुमारी का नाम बकावली पड़ गया। सोणभद्र नामक एक राजा ने योगी के वेश मे आकर बकावली की फुलवारी मे एक अपूर्व फूल लगाकर बदले मे उसे मांग लिया। जब उसका विवाह दूसरे से होने लगा तब योगी ने उसे शाप देकर नटी बना दिया और स्वयं नट बन गया।

दास्तान अमीर हमजा— कहते हैं फैजी ने अकबर के मनोविनोद के लिए फारसी मे इस बड़े पोथे की रचना की थी। इसमे लगभग सत्तरह हजार पन्ने और आठ दफ्तर हैं। पहला दफ्तर नौशेरवां नामा उर्दू १८०१ मे अनूदित हुआ। पांचवां दफ्तर तिलिस्म होशरुबा है जो सात जिल्दों मे है। तिलिस्म होशरुबा की पहली जिल्द उर्दू मे १८८४ मे प्रकाशित हुई। हिन्दी मे उसका अनुवाद 'विचित्र चरित्र' नाम से १८ ३ मे नवलकिशोर प्रेस से निकला। एक जिल्द मे ही १८४७ पृष्ठ है। अनुवादक रामरत्न वाजपेयी हैं। दास्तान अमीर हमजा के आठो दफ्तर हिन्दी मे अनूदित हुए या नही इसका पता नही चलता है। इसी नाम से कालीचरण शर्मा और महेशदत्त शर्मा का जो अनुवाद नवलकिशोर प्रेस मे प्रकाशित हुआ वह एक ही पुस्तक के रूप में है।

अमीर हमजा को केन्द्रीय पात्र बनाकर कही गई इस कल्पित कथा मे प्रेम साहसिकता तिलिस्म एयारी और जादू के एक से एक बढ़कर खेल हैं। असंभव घटनाओ अतिनाटकीय दृश्यो और अद्भुत परिस्थितियो की योजना मे रचयिता की कल्पना का चमत्कार देखकर दंग रह जाना पड़ता है। यह न तो मन मे विश्वास बढ़ाता है न हृदय को स्पर्श करता है केवल कल्पना को उकसाता रहता है। उसकी कथा उसके नायक का थोड़ा दर्द के लिए भी छिपा नही पाती है। अमीर मानव होकर भी आतमानवीय शक्ति से संपन्न है। उसे देखकर इसका अनुमान होता है कि छोटा सा मनुष्य कितना महान होता है। अमरू ऐयार उसका साथी है पैगम्बर उसके सहायक हैं सुन्दरियां

का आधार और मानवीय सम्बन्ध का मूल प्रश्न है। पुरानी कथाओं की भांति कुछ उपन्यासों में अवैध प्रेम और निम्न कोटि की वासना का वर्णन है किंतु जहां एक में अश्लीलता की गंध है वहां दूसरे में कला का स्पर्श है।

तिलिस्म ऐयारी और जादू के उपन्यासों पर फारसी प्रभाव स्पष्ट है। उनकी विशिष्टता यह है कि वे इस प्रकार की लोकप्रिय कथाओं के साहित्यिक रूप हैं। वे कौतूहल तृप्त करके नहीं रह जाते विविध भावों का संचार भी करते हैं। देवकीनन्दन खत्री ने चन्द्रकान्ता की कथा का बीज तिलिस्म होशरुबा से लिया था।[16] चहारदर्वेश की भांति चन्द्रकान्ता संतति में पात्रों की आपबीती से कथा का उद्घाटन हुआ।

वक्ता श्रोता की प्रणाली मुख्य कथा में उपकथाओं का निबद्ध करने का कौशल और कलात्मक रचनाविधान भारतीय एवं अभारतीय कथाओं के अद्भुत कथा शिल्प के परिचायक हैं। इस शिल्प का प्रयोग कुछ विनोद रचनाओं—जैसे, श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती लाला श्रीनिवास दास के परीक्षा गुरु, विश्वेश्वरानन्द की चतुरा की चतुराई—में किया गया है परन्तु समष्टित उसे उपन्यासों में नहीं अपनाया गया। फारसी की मसनवी और दास्तान की शैली का भी चलन नहीं हुआ। कथामाला-शैली का उपयोग विशेषतया किसी कृति का कलेवर बढ़ाने के लिए किया जाता था ताकि अवकाशभोगी वर्ग की रुचि का प्रसादन हो सके। नवयुग के पाठक उस राजा के समान नहीं थे जिसे कभी अन्त नहीं होने वाली कथा सुनने का शौक चर्राया था। उपन्यासकारों को नई वस्तु के लिए नये शिल्प का प्रयोग करना पड़ा।

लोकप्रिय कथासाहित्य का रस कथारमक अंश में है। उसके रचयिता कथक्कड़ या किस्सागो थे जिनका मुख्य उद्देश्य कथ्य को रमणीय और विश्वसनीय बनाकर मनोरंजन करना था। प्रारम्भिक उपन्यास लेखक उनके उत्तराधिकारी होने के कारण कहानी सुनाने की कला जानते थे। देवकीनन्दन खत्री और प्रेमचंद जैसे प्रतिभाशाली कलाकारों ने उनसे कहानी कहना सीखा था। जिसमें कहानी कहने की सहज शक्ति होती है। वह भी कहानी सुनने या पढ़ने के बाद लिखने में समर्थ होता है। अतः कथाकार किसी न किसी रूप में पूर्व कथासाहित्य और उसकी कला से प्रभावित होता है। अपने पूर्वजों की भांति उपन्यासकार भी कथा को रुचिकर बनाने के लिए घटना को प्रधानता देते थे वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करते थे और उपदेश की छौंक देते थे।

पुराने किस्से-कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता मनोरंजकता थी जो उपन्यासों को अनायास मिल गई।

इसमें सन्देह नहीं कि नये लेखकों और पाठकों में उनका प्रचार बहुत दिनों तक रहा और उन्हें पढ़कर वे कहानी पढ़ने का शौक पूरा करते रहे। जैसे-जैसे उपन्यास का विकास होता गया उनसे शिष्ट समाज का सम्पर्क घटता गया। प्रेमचंद के उदय के बाद उनकी प्रभावशीलता जाती रही और वे फुटपाथ की शोभा बनकर रह गईं। कथासाहित्य के अभाव के दिनों में जनता का उनसे मनोविनोद हुआ और उनसे हुई पीढ़ा की रुचि आक्रान्त हुई। 'चन्द्रकान्ता' की लोकप्रियता के मूल में वह लोकरुचि थी जो लोकप्रिय कथाओं से बनी थी। लोग जिस ढंग की कथा पढ़ने के अभ्यस्त थे उस ढंग के उपन्यास के लिए उत्सुक और अधीर हुए।

ग—उद्गम और स्वरूप

उपन्यास के पूर्ववर्ती कथासाहित्य के उद्गम और स्वरूप पर सामान्य रूप में विचार करना आवश्यक है। उसके चार स्रोत दिखाई पड़ते हैं, संस्कृत साहित्य, फारसी साहित्य, लोकसाहित्य और अँग्रेजी साहित्य। संस्कृत से प्राप्त सामग्री प्राचीन और मध्यकालीन भारत की सामग्री है जो समकालीन समाज और संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत करती है। पौराणिक, नीतिपरक और मनोरंजन प्रधान कथाओं का अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व से ही आरम्भ हो गया था। उनमें उद्देश्यगत एकता है यद्यपि उनका विषय धार्मिक भी है और लौकिक भी। पौराणिक कथाओं में भौतिकता का और लौकिक कथाओं में धार्मिकता का रंग है। वे जीवन के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण व्यक्त करती हैं और उसे जीने योग्य बनाने का सन्देश देती हैं। फारसी साहित्य का सम्पर्क दक्खिनी गद्य के माध्यम से आरम्भ हुआ। दक्खिनी गद्यकथा दार्शनिकता प्रधान होने के कारण विशिष्टता-सम्पन्न है। मुस्लिम जगत के नियंताओं और दानी बादशाह प्रभृति आदि को केन्द्र बनाकर लिखी गई कथाएँ शैलियों, कथानक रूढ़ियों और शैलियों में एक-सी हैं। रानी केतकी की कहानी को छोड़कर प्रायः सबका वातावरण विदेशी है। ये प्राकृत और अप्राकृत के संयोग से मन पर जादू का असर डालती हैं। लोकसाहित्य से प्रेम और वीरता की रोमानी कथाएँ ली गईं जो मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक सम्पत्ति थीं। इनके नायक-नायिका विशेषतया उच्चवर्गीय समाज

क है पर उनका चित्रण मानवीय यथार्थ और भारतीय आदर्श के धरातल पर हुआ है अत वे जन मन को प्रभावित करते रहे हैं। राजा भोज विक्रम नल, भरथरी आदि से सम्बन्धित कथाएँ वास्तव में जनता की वस्तु हैं। शायद इनकी जनप्रियता को देखकर ही मुस्लिम लेखकों ने इनके अनुरूप अमीर हमजा जसे निजधरी नायक की कल्पना की थी। अनेक फारसी कथाएं मध्य कालीन भारत म ही रची गइ।

भारतीय कथासाहित्य की प्राचीन परम्परा म नतिक और धार्मिक दृष्टिकोण की प्रधानता है, मध्यकालीन परम्परा म ऐहिक और मानवीय दृष्टिकोण की पाप पुण्य त्याग विराग के स्थान म प्रेम सम्मान, ईर्ष्या द्वेष का वर्णन आदर्श से यथार्थ की ओर प्रयाण है, जो उपन्यास के लिए शुभ लक्षण है।

संस्कृत फारसी और लोकप्रिय कथाओं का वर्ण्य विषय पुराना है। महाकाव्य पुराण दंतकथा इतिहास आदि से उनके कथानक लिए गए हैं। पाठ्य पुस्तकों के रूप में लिखित कहानियों में नवीन वस्तु और विचार की झलक मिलती है। उनके पात्र राजा रानी न होकर साधारण पुरुष-नारी हैं। वे आधुनिक भारत की आवश्यकता और भावना के अनुकूल हैं। वे मुख्यत अंग्रेजी साहित्य से ली गई है। इनसे हिन्दी उपन्यास का सीधा सम्बन्ध है। कुल मिलाकर प्रस्तुत अध्याय के कथासाहित्य म अलौकिकता से लौकिकता का पक्ष प्रबल है। स्वच्छंद प्रेम उसका प्राण रस है। यह प्रवृत्ति उपन्यास की मौलिक प्रवृत्ति रही है।

उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध म उपन्यास की दो प्रमुख धाराएं फूटी। एक धारा वास्तविक जीवन की पृष्ठभूमि में मानव चरित्र का अध्ययन करने लगी और दूसरी चरित्रचित्रण की अपेक्षा अद्भुत घटनाओं को प्रधानता देकर मनोरम कहानी सुनाने म लग गइ। चरित्र प्रधान उपन्यास ने शिष्ट कथा साहित्य का और घटना प्रधान उपन्यास ने लोकप्रिय कथासाहित्य का स्थान ले लिया। पूर्वार्ध में उपन्यास का आगमन नहीं हुआ लेकिन उसका माग बन गया। वह हिन्दी कथासाहित्य के इतिहास का निर्णयात्मक काल है। उस समय नवीन गद्य और मुद्रण यन्त्र का प्रचार हुआ[17], जिनसे उपन्यास को जीवनाधार मिला। ग्रियर्सन ने इस काल को नवजागरण का काल'[18] ठीक ही कहा है।

टिप्पणियाँ

१– तब घर म बठे रहे नाहिन हाट-बजार ।
मधुमालती, मृगावती, पोथी दोय उचार ॥
—रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास
पृ० ९९ मे उद्धृत

२– ब्रजभाषा, राजस्थानी अवधी खड़ी बोली और मथिली का साहित्य हिन्दी का साहित्य माना जाता है। अवधी मे गद्यकथा उपलब्ध नही है। मथिली हिन्दी से भिन्न स्वतन्त्र भाषा है जिसकी अपनी लिपि और अपना साहित्य है। अत इन पर विचार नहीं किया गया है।

३– डा० बाबूराम सक्सेना दक्खिनी हिन्दी' (१९५२) पृ० ८८

४– श्रीराम शर्मा दक्खिनी का पद्य और गद्य' (१९५४) पृ० ४०६

५– हिन्दी-साहित्य का इतिहास' पृ० ४०७

६– मोतीलाल मेनारिया 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' पृ० १८०

७– उदाहरण के लिए सूरति मिश्र ने वैताल्पचविंशतिका का ब्रजभाषा म पद्यानुवाद किया।

८– हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ४८३

९– देखिए रामलोचन शरण द्वारा सपादित 'बिहार का साहित्य (१९२६)

१०– हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ४३६

११– उपन्यास हिन्दी प्रदीप जनवरी १८८२, पृ० १९

१२–उपन्यास लेखको ने अपनी रचनाओ म लोकप्रिय कथा-ग्रंथों का विशेष स्थलों पर निर्देश किया है और अपने पात्रो को उनका अध्ययन करते हुए दिखाया है। इसस यह निष्कर्ष निकलता है कि ये लेखकों और पाठको क बीच प्रचलित थे। उदाहरण के लिए राधाचरण गोस्वामी की बालविधवा' म बहारदर्वेश का उल्लेख (भारतेंदु जनवरी–फरवरी–माच १८८५ पृ० १५३) है। लाला श्रीनिवासदास का नायक अभि फलरा' का 'सोते जागते का किस्सा पढ़ता है (परीक्षागुरु, पृ० ३८)।

१३– अनेक शताब्दी के मुसलमानों क साथ ससग से जहाँ बंतावली मीरहसन बेहारदर्वेश हातिमताई जैसे ग्रंथों का जन साधारण में आदर था
—शिवनन्दन सहाय हरिश्चन्द्र पृ० १२०

१४– छोटी छोटी कथाओं की पद्धति भारत मे बहुत प्राचीन काल से चली आती थी। बौद्धो और जनों के धम ग्रथों के निर्माण-काल तक इस पद्धति का पूण विकास हो चुका था। ६०० ई० से पूव बहुत सी कथाएँ बन चुकी थीं, जिनका महाभारत और पुराणों आदि म समावेश है।

—गौरीशकर हीराचन्द ओझा मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ० ६१

१५–हजारी प्रसाद द्विवदी हिन्दी साहित्य पृ० ३६७

१६–प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य, पृ० ६१

१७–आधुनिक गद्य के प्रवतक लल्लूलाल मुद्रणयन्त्र के भी सस्थापक थ। इस काय म उन्ह एक ऐसे अग्रेज से सहायता मिली थी जिसे उन्होंने गगा म डूबन से बचाया था।

18– *It was the period of renaissance of the practical introduction of the printing press into Northern India and of the foundation of the modern school which now shows such commendable activity*

—द माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, प० १०७



२

उपन्यास : एक नई कला

पूँजीवादी युग की देन

सभ्यता के विकास के समानान्तर ही साहित्य की विधाओं का विकास हुआ है। कहानी कहना और सुनना मनुष्य का स्वभाव है, इसलिए उसका जन्म भाषा के जन्म के साथ हुआ होगा। लिपि के आविष्कार के पूर्व आदिम मानव-समाज में उसका प्रचलन रहा होगा। उसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानवता का इतिहास। सभ्य-असभ्य सभी जातियों में उसकी परम्परा अक्षुण्ण रही है। संसार के प्राचीनतम ग्रंथों में उसके बीज विद्यमान हैं। पुराण, जातक, कुरान, बाइबिल आदि धर्मग्रंथों में उसके द्वारा नीति और रीति की शिक्षा सरल, मार्मिक ढंग से दी गई है। यद्यपि कल्पना प्रसूत साहित्य में कथासाहित्य सर्वाधिक प्राचीन, सर्वव्यापी और सम्पन्न है तथापि उसका स्वतन्त्र अस्तित्व काव्य और नाटक के बाद स्थिर हुआ है और उसका जो रूप अंग्रेजी में 'नोवेल' तथा हिन्दी में 'उपन्यास' के नाम से अभिहित है, वह तो आधुनिक सभ्यता की उपज है।

जैसे-जैसे सभ्यता भौतिकता का आवरण ग्रहण करती गई, कथा प्रस्तुत करने की रीति बदलती गई। प्रथम अलिखित कथा से प्रथम मुद्रित उपन्यास तक कथासाहित्य को विकास की अनेक अवस्थाएँ पार करनी पड़ीं। उनमें ये अवस्थाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं जब उसने लिखित रूप धारण किया, जब उसने स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त की और जब उसने पद्य का राजमार्ग छोड़कर गद्य का जनपथ ग्रहण किया। इस विकास-क्रम के बाद विशिष्ट

कला क रूप म उपन्यास का जन्म हुआ। साहित्यिक इतिहासकार इसके मूल की खोज संस्कृत, ग्रीक या लटिन के रोमास[1] म कर सकते हैं पर उसस इसका सीधा सम्बन्ध नही दीखता। ग्यारहवी शताब्दी म जापानी लेखिका मुरासाकी शिकाबू लिखित 'गेंजी मोनोगतरी संसार का सबसे पुराना उपन्यास माना जाता है।[2] सामती समाज का यथार्थ चित्रण करने वाला यह उपन्यास सामती युग की कलाकृति है पर उपन्यास का वास्तविक विकास पूँजीवादी युग म ही सभव हो सका।

जसे कलात्मक विनोद का प्राचीनतम साधन महाकाव्य है वस ही उसका नवीनतम साधन उपन्यास है। उपन्यास न मानवीय अनुभव को सपूर्णता के साथ प्रस्तुत करने मे महाकाव्य का स्थान ले लिया है और इस अर्थ म उसे महाकाव्य का उत्तराधिकारी मानना उचित ही है।[3] प्रकृत महाकाव्य मे सभ्यता की उस अवस्था का दिग्दशन है जब जीवन में सामजस्य सरलता और सपन्नता थी। पूँजीवादी सभ्यता की विषमता संघर्ष जटिलता और विविधता की अभिव्यक्ति क लिए उपन्यास सवथा सक्षम और योग्य था। पूँजीवाद ने उस उचित उपादान उपयुक्त माध्यम, और प्रचारात्मक साधन प्रदान कर विश्व साहित्य का अंग बना दिया। उत्पादन क साधन मे परिवतन होने से व्यक्ति और समाज की समस्याएँ बढ़ी, सामाजिक विषमता ने व्यक्तिगत विशेषता को जन्म दिया मुद्रण यत्र का प्रचार हुआ और अवकाश की वृद्धि हुई। फलत उपन्यासकारो को नई कथा सामग्री, विभिन्न प्रकार के पात्र और पाठक मिले। काडवेल क अनुसार उपन्यास के विकास का आधार श्रम विभाजन है।[4] वास्तव म वह आर्थिक परिवतन स उद्भूत नये मनुष्य का नया साहित्य है।

यूरोप मे चौदहवी-सोलहवीं शताब्दियो के बीच नवजागरण के फलस्वरूप समाज और साहित्य म अपूर्व क्रांति हुई। सामतवाद के ध्वस शेष पर पूँजीवाद का आविर्भाव हुआ और उसके साथ ही साहित्य म मध्ययुग का अन्त और नवयुग का आरम्भ हुआ। उपन्यास इस नवयुग की सर्वोत्तम सृष्टि है। जिस तरह नवजागरण की लहर इटली से उठकर यूरोप के अन्य देशों मे फली उसी तरह उपन्यास का प्रचार इटली से धीरे धीरे स्पेन फ्रास इंगलण्ड आदि देशो म हुआ।[5] इटली यूरोप का पहला पूँजीवादी देश था। वहाँ उपन्यास की उद्भावना स्वाभाविक और साथक थी। उस देश के प्रसिद्ध लेखक बोकेशियो का 'डेकामेरन (१३५३) उपन्यास का प्रारूप था।

लगभग दो सदियों तक वहाँ बोकेशियो का अनुकरण किया गया। इस साहित्यिक परिपार्श्व में फ्रांस में रबेले, स्पेन में सरवांते और इंग्लैंड में फील्डिंग ने क्रमशः 'गरगतुआ' (१५३२), डान क्विजोट' (१६०५) और 'टोम जोन्स' (१७४९) लिखकर महान प्रारम्भिक प्रयोग किए।

इस प्रकार उपन्यास का पुराना नमूना पूर्व में मिलता है किन्तु वर्तमान रूप में वह पश्चिम में उत्पन्न हुआ। भारत में उसका आयात अंग्रेजी के साथ हुआ। भारतवासियों ने अंग्रेजी फैशन की तरह अंग्रेजी उपन्यास को अपना लिया। यूरोप की भाँति भारत में भी उपन्यास नवजागरण की विशिष्ट देन है। इस प्राचीन देश के लिए कथा कहानी बहुत पुरानी वस्तु है परन्तु उपन्यास नवलेखन है यद्यपि कुछ विद्वान उसे कथासाहित्य की भारतीय परम्परा में मानते हैं।

पुरानी कथा-परम्परा और उपन्यास

पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने अमर कोषकार की परिभाषा ('उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्') के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया[1] कि उपन्यास शब्द का प्रयोग पहले किया गया है इसलिए प्राचीन भारत में उपन्यास का प्रचलन था। पर अमरकोष में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग उपन्यास के आधुनिक अर्थ में नहीं किया गया है। वहाँ 'वाङ्मुखम' का अर्थ है प्रस्तावना। फिर गोस्वामी जी ने दशकुमारचरित, 'वासवदत्ता', हर्षचरित और कादम्बरी' को उपन्यास मानते हुए कहा है कि 'जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों में नाटक का प्रचार प्रथम यहीं हो हुआ था उसी तरह उपन्यास की सृष्टि भी प्रथम यहीं हुई थी।'[7]

वास्तविकता तो यह है कि पश्चिमी सम्पर्क के पूर्व हमारे देश में आधुनिक ढंग के उपन्यास और कहानी नाम से दो भिन्न साहित्यांग नहीं थे। दंडी ने कथा आख्यायिका में जो अन्तर बताया वह तात्त्विक अन्तर नहीं था। दंडी ने स्वयं यह कहकर उसका निराकरण कर दिया — 'तत कथाख्यायिकेत्येक जाति।'[8] अग्निपुराण में गद्यकाव्य के पाँच प्रकार माने गये हैं[9] जिनमें अन्तिम तीन कथा में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। कथा आख्यायिका में शास्त्रीय दृष्टि से भेद स्पष्ट नहीं किया गया है तथापि बाण ने कल्पित 'कादम्बरी' और ऐतिहासिक 'हर्षचरित' लिखकर और उन्हें क्रमशः कथा और आख्यायिका मानकर व्यावहारिक दृष्टि से भेद किया है। किन्तु यह

भेद भी शलीगत न होकर विषयगत है। साहित्य शास्त्र में कथा आख्यायिका की न तो विस्तृत व्याख्या या कलागत विवेचना की गई है और न उनके लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग हुआ है बल्कि उन्हें काव्य के अन्तर्गत रख दिया गया है।

हिन्दी को उत्तराधिकार मे सस्कृत से तीन प्रकार की कथाएँ मिली उपदेश-प्रधान (पञ्चतन्त्र) मनोरजन-प्रधान (कथासरित्सागर), और भाव प्रधान (कादम्बरी)। इनम प्रथम गद्यपद्यमय हैं द्वितीय पद्यमय और तृतीय गद्यमय। सस्कृत के अति समृद्ध कथासाहित्य मे दशकुमारचरित कादम्बरी' और वासवदत्ता जसी गिनी चुनी बडी गद्यकथाए ही उपन्यास के निकट लाई जा सकती हैं। इन्ह गद्यकथा न कहकर गद्यकाव्य कहना अधिक उचित है क्योंकि ये गद्य में लिखी गई हैं पर इनकी शली में काव्यकला क दर्शन होते हैं। दडी न समास को गद्य का जीवन कहा था[10] बाण न विकटाक्षरबन्ध' को कथा का आवश्यक गुण माना था[11] और सुबन्धु ने अपनी कृति के अक्षर अक्षर मे श्लेष की छटा दिखाने का प्रण कर लिया था।[12] सिद्धान्तत बाण ने कथा की सरलता और स्वाभाविकता को महत्त्व दिया था और उसकी उपमा पति के पास प्रेम से स्वय आने वाली वधू[13] स दी थी पर अपनी कलाकृतियों मे वे अपनी उपमा को सार्थक नहीं कर सके। विद्वानो द्वारा विद्वानो के लिए रचित सस्कृत गद्यकाव्य का रस चमत्कार मे है। उसम कथा का अश गौण और वर्णन का अश मुख्य है। जितना ध्यान रस-सचार और अलकरण-सज्जा की ओर दिया गया है उतना शील निरूपण की ओर नही। जिन विशेषताओ के कारण उसे साहित्य के उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया जाता है वे उपन्यास म दुर्लभ हैं। उसे उपन्यास की धूल भरी चौहद्दी पर खीचकर लाना उसका अपमान करना है। एक दशकुमारचरित ही अपने सगठित कथानक सजीव चरित्र चित्रण निराडम्बर शली और यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण आधुनिक उपन्यास की कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति करता है लेकिन वह भी अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो स पूर्ण है। उस अधिक से अधिक पश्चिमी ढग का पिकारेस्क रोमास कहा जा सकता है। शास्त्रीय और व्यावहारिक दोनो दृष्टियो से सस्कृत गद्यकाव्य आधुनिक उपन्यास की कोटि मे नही आते। कीथ ने अपने इतिहास म इनका विवेचन 'महान रोमास' के रूप म किया है।

गोस्वामीजी की भाति गहमरीजी भी उपन्यास को पश्चिम की देन

नहीं मानते। उनके अनुसार 'नाटक और उपन्यास विदेशी वस्तु नहीं हैं और न हमारे देश में विलायत की नकल से चले हैं।'[14] उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि उपन्यास विदेश से नहीं आया तो कहाँ से आया? यदि उनका अभिप्राय यह हो कि हिन्दी में उपन्यास सीधे अंग्रेजी से न आकर बंगला के माध्यम से आया तो उनका कथन कुछ अंशों तक ठीक है और यदि यह हो कि संस्कृत से आया तो निराधार है क्योंकि संस्कृत कथासाहित्य और हिन्दी उपन्यास के आदर्शों में मेल नहीं है। गोस्वामीजी और गहमरीजी के उपन्यास भी संस्कृत शैली के गद्यकाव्य न होकर अंग्रेजी शैली के उपन्यास हैं। वे संस्कृत गद्यकाव्य की भाँति भाव प्रधान नहीं हैं बल्कि अंग्रेजी उपन्यास के समान घटना प्रधान या चरित्र प्रधान हैं। उन्होंने ऊपर जो कुछ कहा है वह प्रत्येक वस्तु को भारतीय सिद्ध करने की समकालीन प्रवृत्ति का द्योतक है।

भारत कविता, कहानी और नाटक का जन्मस्थान माना जा सकता है संस्कृत गद्य प्रबन्धों को उपन्यास का प्राचीन प्रतिरूप कहा जा सकता है किन्तु उपन्यास यन्त्र युग की उपज है और आधुनिक यूरोप में विकसित हुआ है। संस्कृत हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान और अनन्य प्रेमी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट कहा है

यह संस्कृत भाषा के प्राचीन गद्य साहित्य में भी पाया जाता है। पर अंकुर रूप में हो उसके दर्शन होते हैं। प्रकृत उपन्यास-साहित्य के जनन उन्नयन और प्रचलन का श्रेय पश्चिमी देशों ही के लेखकों को है।[15]

कादम्बरी, वासवदत्ता' आदि उपन्यास हों या गद्यकाव्य उपन्यास विदेशी वस्तु हो या भारतीय मूल प्रश्न तो यह है कि हिन्दी में उपन्यास-लेखन संस्कृत कथा-आख्यायिका के नमूने पर आरम्भ हुआ या अंग्रेजी उपन्यास के नमूने पर? इस सम्बन्ध में गोस्वामीजी और गहमरीजी से भी पहले उपन्यास और उसकी आलोचना लिखने वाले प० बालकृष्ण भट्ट के मत से अधिक ठोस और प्रामाणिक मत क्या हो सकता है?

हम लोग जैसा और बातों में अंग्रेजी की नकल करते जाते हैं उपन्यास का लिखना भी उन्हीं के दृष्टांत पर सीख रहे हैं।[16]

अस्तु, हिन्दी उपन्यास का जन्म संस्कृत गद्यकाव्य का पुनर्जन्म नहीं था। हमारे उपन्यासकारों ने अंग्रेजी उपन्यास या उस पर आधारित बंगला उपन्यास के ढंग पर उपन्यासों की रचना की। रहस्यकथा (१८७९) में

लेकर अपने अपने अजनबी (१९६१) तक की परम्परा पश्चिमी ढंग के उपन्यासों की परम्परा है। हमारे मूर्धन्य आलोचक भी एक स्वर में स्वीकार करते हैं[17] कि उपन्यास की कला पश्चिम से आई है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रारम्भिक उपन्यासकार संस्कृत गद्यकाव्य से परिचित थे और उन पर उसका सीधा या बंगला माध्यम से कुछ प्रभाव पड़ा किन्तु यह प्रभाव उस समय परिलक्षित हुआ जब पश्चिमी आदर्श पर उपन्यास की रचना आरम्भ हो चुकी थी। संस्कृत गद्यकाव्य का अनुवाद भी अंग्रेजी उपन्यास के प्रचलन के उपरान्त हुआ था। सामान्यतया रूप गुण के अतिरंजित वर्णन और विशेषतया नारी और प्रकृति के अलंकरण में उपन्यासकार बाण और सुबन्धु के अनुगामी जान पड़ते हैं। उनकी वर्णन शैली अंग्रेजी प्रभाव की सूचना नहीं देती क्योंकि अंग्रेजी उपन्यासकारों ने शैली के प्रति विशेष मोह प्रदर्शित नहीं किया है।

कुछ आलोचक हिन्दी उपन्यास की परम्परा को मध्यकाल से मानते हैं। मिश्रबन्धु की सम्मति में उपन्यास विभाग चलता तो पहले से था और प्रौढ़ तथा अलंकृत काल वाले कुछ ग्रंथ ऐसे ही थे तथापि इसका प्रचार भारतेंदु के समय से ही माना जा सकता है।[18] डा० श्यामसुन्दरदास के कथन में भी यह अंतर्विरोध है हिन्दी के उपन्यास आधुनिक समय की उत्पत्ति हैं। परन्तु ध्यान से देखने पर इनकी परम्परा प्रमाख्यानक कवियों के पद्यों में ही आरम्भ होती दिखाई देती है'।[19] डा० माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य में उपन्यास की सूची देते हुए पद्मावत चित्रावली आदि को प्राचीन उपन्यास के अन्तर्गत रखा है। श्री कृष्णशंकर शुक्ल तथा श्री शिवनारायण लाल श्रीवास्तव रानी केतकी की कहानी को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं।[20]

मिश्रबन्धु के कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि प्रौढ़ माध्यमिक काल तथा अलंकृतकाल के किन ग्रंथों को वे उपन्यास मानते हैं। यदि उनका अभिप्राय उक्त कालों के महाकाव्य कथाकाव्य और वर्णनात्मक काव्य से हो तो वे उपन्यास नहीं कहे जा सकते और यदि गद्य रचनाओं से हो तो अब तक ऐसी कोई रचना नहीं मिली है जिसे उपन्यास की कोटि में रखा जा सके। जिस तरह कतिपय अंग्रेज आलोचक उपन्यास और रोमांस का सम्बन्ध जोड़ते हैं उसी तरह डा० श्यामसुन्दरदास ने प्रमाख्यानक काव्य को रोमांस काव्य के निकट लाकर उसका सम्बन्ध उपन्यास के साथ जोड़ दिया है जो उचित प्रतीत नहीं होता। उपन्यास गद्यकथा है जब कि प्रमाख्यानक काव्य पद्यकथा

है। पद्य में नाटक तो कई लिखे गये हैं अब तक उपन्यास एक भी नहीं लिखा गया है। पद्यबद्ध उपन्यास जैसी कोई साहित्यिक वस्तु नहीं है। गद्य कथा का गति विस्तार और आधार प्रदान करता है इसलिए उपन्यासकार उसके माध्यम से कहानी सुनाने के साथ ही व्यक्ति और वातावरण का चित्रण कर पाता है। पद्य में ऐसी सम्भावना नहीं है। कथाकाव्य और उपन्यास में न केवल माध्यम का बल्कि उपादान और दृष्टिकोण का भी अन्तर है।

गद्य का आवरण ग्रहण करने से भी कोई रचना उपन्यास नहीं बन जाती। यदि गद्यकहानी होने से 'रानी केतकी की कहानी' उपन्यास हो सकती है तो 'नासिकेतोपाख्यान' भी उपन्यास कहलाने का दावा कर सकता है। 'रानी केतकी की कहानी' को उपन्यास मानने का एक कारण यह भी हो सकता है कि वह एक बड़ी कहानी है। किन्तु वह आकार में उपन्यास को भले ही छू ले प्रकार में उससे दूर है। माध्यम, आकार और गठन उपन्यास के प्रत्यक्ष परिचायक अवश्य होते हैं पर केवल उनके आधार पर उसका स्वरूप सुनिश्चित करना भ्रामक है। कई लम्बी कहानियाँ लघु उपन्यास से बड़ी होती हैं और कई लघु उपन्यास बड़ी कहानी से बड़े होते हैं। उनकी विभिन्नता का मूलाधार आकार नहीं है। फास्टर के मत से ५०००० शब्दों से अधिक की कोई कल्पित गद्य रचना उपन्यास है।[११] इस परिभाषा के अनुसार बालकृष्ण भट्ट का नूतन ब्रह्मचारी लगभग १०००० शब्दों की गद्य रचना होने के कारण उपन्यास की पंक्ति में नहीं आ सकता है। यह एक कामचलाऊ परिभाषा है। इस आधार मानने पर आलोच्यकाल के अनेक छोटे उपन्यास लम्बी कहानियों में गिने जाएँगे। हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक काल में उपन्यास और कहानी के बीच रेखा खींचना कभी कभी अत्यन्त कठिन हो जाता है। उनका भेद स्वरूप में उतना नहीं जितना विषय में है। जैसे-जैसे उपन्यास का विकास होता गया यह भेद स्पष्ट होता गया और कहानी तथा उपन्यास भिन्न साहित्य रूप बन गए। कहानी जीवन का खण्डचित्र है। उपन्यास में जीवन की विविधता विशदता और पूर्णता रहती है।

उपन्यास का रूपविधान

उपन्यास के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द नोवेल उसकी विशेषता का बोधक है। इस शब्द का अर्थ होता है नवीन। उपन्यास साहित्य का प्राचीन नहीं नवीन रूप है। नवीनता उसका मूल आकर्षण है। हिन्दी उपन्यास तीन

पीढ़ियाँ देख चुका है। हर पीढ़ी के लेखकों ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों को पुरानपंथी मानने का साहस किया है। पं० अंबिकादत्त व्यास को संस्कृत कथा आख्यायिका इतनी नीरस प्रतीत हुई कि उन्होंने 'वासवदत्ता' के सम्बन्ध में लिखा कि कवि को कहानी बाँधना भी न आया।[22] प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में एक मौजी पात्र से कहवाया था कि अनुवादों को निकाल दिया जाय तो हिन्दी में 'चन्द्रकान्ता संतति' के सिवा और कुछ रहता ही नहीं। और आज कुछ नये लेखकों की दृष्टि में प्रेमचन्द की रचनाएँ भी पुरानी पड़ गई है। अपने पूर्वजों की आलोचना, उपहास और निंदा करना अपने को श्रेष्ठतर घोषित करने का प्रयास तो है ही नवीनता के प्रति आग्रह व्यक्त करना भी है।

वास्तव में उपन्यास जीवन के समान ही गतिशील और परिवर्तनशील है। उसमें जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों के प्रति अपने को अनुकूल बनाने की अपूर्व क्षमता है। उसका रूपविधान सामयिक परिवेश और साहित्यिक प्रयोग से हुआ है। पूंजीवादी समाज की अवस्थाओं के अनुरूप ही उसके स्वरूप में परिवर्तन होता गया है। उन्नीसवीं सदी में पूंजीवाद प्रारंभिक अवस्था में था अतः उपन्यास की रूपरेखा सुनिश्चित नहीं हुई थी। प्राचीन शास्त्रीय नियमों के बन्धन से मुक्त होने के कारण वह स्वयं अपने नियमों का निर्माण और उल्लंघन करता आया है। उसमें स्वतन्त्रता और नमनशीलता है इसलिए नये नये प्रयोगों के लिए गुंजाइश है। उसमें कुछ ऐसी शिल्पगत विशेषताएं हैं जो उसे संस्कृत गद्यकाव्य, मध्यकालीन हिंदी कथाकाव्य और पूर्व की गद्यकथाओं से अलग करती हैं। इन विशेषताओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व की भलीभाँति परख की जा सकती है।

उसके छः अंग हैं : कथावस्तु, पात्र, वार्तालाप, वातावरण, उद्देश्य और शैली। ये अंग परस्पर इतने सम्बद्ध है कि एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। अलग कर देखने से जो अवयव नगण्य और प्रभावहीन प्रतीत होते हैं उनसे निर्मित होने पर एक रचना अपनी संपूर्णता में सार्थक सुन्दर और सजीव हो जाती है जैसे दूब पर ओसकण। हनरी जेम्स की मान्यता है कि उपन्यास एक जीवित वस्तु है और उसके एक अंग में दूसरा निहित रहता है।[23] विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए भिन्न भिन्न अंगों या तत्वों का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है।

कथानक

कथानक उपन्यास का मेरुदण्ड है। उसकी नवीनता उपन्यास की प्रमुख

विशेषता है और उसे पुरानी कथा परम्परा से पृथक् करती है। संस्कृत गद्य-काव्य का कथानक प्रख्यात है। उपन्यास के पूर्व हिन्दी में लिखित गद्यकथाओं का विषय परम्परागत है। 'रानी केतकी की कहानी' भी प्रेमाख्यान परम्परा की एक कड़ी है। वह या तो साहित्यिक परिधान में लिपटी हुई लोककथा है या लोककथा के सादृश्य पर गढ़ी गई कथा है। उपन्यास की कथावस्तु जीवन की पुस्तक से ली गई जिसमें नित नए पृष्ठ जुड़ते रहते हैं। इसलिए उसमें नवीनता का अभाव नहीं हुआ। असम्भव, असत्य सम्भव सत्य में वह सम्भव और सत्य का रूपक पुरानी कथाओं से अलग हो गया। दोनों में उतनी ही भिन्नता है जितनी सत्य और कल्पना में। उपन्यास केवल कथा नहीं है जीवन की कथा है। उसमें अद्भुत और अपरिचित घटनाओं के बदले साधारण और परिचित घटनाओं का वर्णन रहता है।

अमरीकी आलोचक एडमंड विल्सन के कथनानुसार कला वह है जो अनुभव को अर्थ प्रदान करे।[24] उपन्यास-कला जीवनानुभव को वाणी प्रदान करने में है। स्मृति और कल्पना अनुभव के ही अंग हैं, जिनकी सहायता से मानस का संसार बनाया जाता है। आदि उपन्यासकारों ने परम्परागत कथावस्तु को छोड़कर व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कथावस्तु का निर्माण किया। लाला श्रीनिवास दास सेठों के सम्पर्क में रह चुके थे इसलिए 'परीक्षागुरु' में उन्होंने व्यापारी वर्ग का चित्र क्या अंकित किया निजी अनुभव को ही व्यक्त किया। देवकीनंदन खत्री ने 'चन्द्रकांता' में 'अपने गयाजी की जवानी के तजुर्बे और काशी में आने पर अपनी आँखें देखी हुई जगहों की बहार का वर्णन किया है।[25] किशोरीलाल गोस्वामी 'दूसरों से बोल कर लिखाते रहते थे। लिखाते समय उसी तरह आजमय शब्दों में बोलते थे और कहते थे कि यह प्लाट स्वयं मेरा देखा है और उसका मैंने अनुभव किया है।[26] कुछ लेखकों ने आत्मानुभव को इतना महत्त्व दिया कि उपन्यासों के रूप में आत्मचरित्र लिख दिया। ठाकुर जगमोहन सिंह ने 'श्यामास्वप्न' के समर्पण में उसे अपने जीवनचरित्र की सरिता का हंस कहा है और ब्रजनन्दन सहाय ने अपने 'सौन्दर्योपासक' को अपनी 'जीवनी का एक पृष्ठ'। राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू' के मदनमोहन और बालकृष्ण भट्ट ने 'सौ अजान एक सुजान' के चन्द्रशेखर से तादात्म्य स्थापित किया है। मेहता लज्जाराम शर्मा ने अपने उपन्यासों की भूमिकाओं में लिखा है कि उनके उपन्यास किसी पुस्तक के आधार पर नहीं लिखे गए हैं वे कल्पना

की उपज हैं।

कुछ लेखकों ने अपनी कच्ची सामग्री जीवन से नहीं बल्कि इतिहास पुराण और कथासाहित्य से ली। पर यह स्मरणीय है कि आरम्भ में समकालीन सामाजिक जीवन को ही प्रमुखता मिली तथा अतीत का प्रत्यक्षीकरण और पुनर्निर्माण भी वर्तमान की दृष्टि से किया गया। इससे ऐतिहासिक उपन्यासों में भी सामयिकता का समावेश हो गया और उनका सम्बन्ध सुदूर अतीत से न होकर मुख्यतः मुगलकाल से रहा। उनमें इतिहास से अधिक कल्पना और सत्य से अधिक सम्भावना को स्थान मिला है। वे जातीय गौरव की गाथा या शौर्याश्रित प्रेम का आख्यान हैं। और इसलिए विशुद्ध ऐतिहासिक न होकर राजनीतिक और रोमांटिक हैं। तिलस्मी ऐयारी उपन्यास में भी नवीनता की ओर ध्यान है जैसा कि चन्द्रकान्ता की भूमिका से मालूम होता है।

साहित्य में मौलिकता का महत्त्व सर्वमान्य है। उपन्यास की उत्कृष्टता कथानक की मौलिकता पर निर्भर करती है। जिस उपन्यासकार के अनुभव का आयाम जितना ही बड़ा होता है उसकी कथावस्तु में उतनी ही विविधता और नवीनता होती है। आलोच्यकाल के उपन्यासकारों ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से वस्तु ग्रहण की और इसलिए उनकी रचनाओं में सहज सजीवता है। उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनके अनुभव में व्यापकता तो है गहराई नहीं है। उन्होंने मानवीय मनोभावों और शाश्वत समस्याओं की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। अनुभव की समृद्धि के साथ कल्पना की शक्ति भी अपेक्षित है। इसके अभाव में अनेक उपन्यासकार परिचित परिस्थितियों और दृश्यों का मार्मिक चित्रण नहीं कर सके अपरिचित परिस्थितियों और दृश्यों की बात तो दूर रही। बहुत से गौण लेखकों ने लोकप्रिय लेखकों के वस्तुतत्त्व का अनुकरण या अपहरण किया है।

इन दोषों के बावजूद एक गुण प्रायः सभी उपन्यासकारों में पाया जाता है और वह किसी भी साहित्यकार का प्रथम आवश्यक गुण है। वे अपने और अपने पाठकों के प्रति ईमानदार हैं। उनकी रचनाओं में साहित्यिक सौंदर्य चाहे न हो अनुभूति की सच्चाई अवश्य है। वे देखी सुनी और जानी हुई बातों को ही प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं फ्रेंच प्रकृतवादी फ्लावेयर ने अपने उपन्यास की पृष्ठभूमि की प्रामाणिकता के लिए मिश्र की यात्रा की थी। रामजीदास वैश्य ने फूल में काँटा नामक उपन्यास में इंगलैण्ड के

रूप का वर्णन करने के लिए इंगलैंड की यात्रा तो नहीं की पर एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़कर आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह कोई आवश्यक नहीं है कि महान उपन्यासकार के अनुभव का क्षितिज विस्तृत हो। यदि उसमें रचनात्मक प्रतिभा है तो अपने सीमित ज्ञान के सहारे वह उच्चकोटि के उपन्यास की सृष्टि कर सकता है। अंग्रेजी उपन्यास-लेखिका जेन आस्टेन ने उस दृश्य का वर्णन नहीं किया है जिसमें केवल पुरुष हों। सच्चाई के प्रति इतनी निष्ठा नहीं भी हो तो उपन्यासकार मानव जीवन की उन घटनाओं और क्रियाओं को आधार बनाकर सफल हो सकता है जो लोगों का मर्म स्पर्श कर सहानुभूति उत्पन्न कर सकें। किसी रचना का स्थायी मूल्य इसमें निहित है कि उसमें किस प्रकार के उपादान का उपयोग किया गया है।

उपन्यास की कला वस्तु के चयन और विन्यास से आरम्भ होती है। उपन्यासकारों ने पुराने विषय को कल्पना में रंगकर नवीन बना दिया है। देवकीनन्दन खत्री ने 'दास्तान अमीर हमजा' के कुछ दृश्यों को नया और अनोखा रूप प्रदान किया है। किशोरीलाल गोस्वामी ने कई ऐतिहासिक उपन्यास प्रसिद्ध घटनाओं के आधार पर लिखे फिर भी उनमें मौलिकता और रोचकता है। प्रख्यात या परम्परागत कथानक में भी रस होता है लेकिन उसका प्रचार करने के लिए कल्पना और कला का विशेष उपयोग करना पड़ता है। प्रेमचन्द का कहना था कि 'नये कथानक में वह रस, वह आकर्षण नहीं होता जो पुराने कथानकों में पाया जाता है। हाँ उसका कलेवर नवीन होना चाहिए। शकुन्तला पर यदि कोई उपन्यास लिखा जाय तो वह कितना मर्मस्पर्शी होगा, यह बताने की जरूरत नहीं।'[37] प्राचीन कथा नवीन कलेवर धारण कर मौलिक कथा से अधिक नहीं तो उसके समान आकर्षक हो सकती है क्योंकि वह सनातन सत्य से पूर्ण होने के कारण अक्षय सौन्दर्य और सतत आनन्द की वस्तु होती है। सच तो यह है कि कोई कथानक पूर्णतः मौलिक कहा नहीं जा सकता। कहते हैं, विश्व में कथाकार केवल सात मूल कथासूत्रों की आवृत्ति करते रहे हैं। मौलिकता बिल्कुल नई बात कहने में ही नहीं बल्कि एक बात को अनेक ढंगों से कहने में है। उपन्यास का वास्तविक विषय स्वयं उसका लेखक है और उसकी मौलिकता लेखक की कल्पना की मौलिकता है। उसमें विषय की अपेक्षा लेखक का महत्व अधिक है। कथा वस्तु तो साहित्य-जगत की कोष है जो प्रबन्ध काव्य, आख्यानक काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास सबकी सामूहिक सम्पत्ति है। उपन्यास-लेखकों ने

ता चला व्यवस्था और नियम का। फिर मध्य या अत स आरम्भ करना किसी हद तक स्वाभाविक भी है। वास्तविक जीवन म भी हम पहले किसी व्यक्ति को दूकान म सामान खरीदते हुए या सडक पर जाते हुए देखते हैं पीछे उसका परिचय पाते है पहले कोई काय होता है फिर उसका कारण जानने की कोशिश करते है और इस तरह आगे से पीछे की ओर लौटते है। यदि उपन्यास म पात्र और क्रिया को इस रीति से दिखलाया गया तो यह जीवन का ही प्रतिबिम्ब था। उसका सुखद अत मनमाना होकर भी निरथक नही था। पुराने कथाकारो की भाँति उपन्यासकारो का मुख्य उद्देश्य कहानी सुनाना नहीं था। वे कहानी के माध्यम स अपना निश्चित दृष्टिकोण व्यक्त करना चाहते थे। अत कथानक का लक्ष्य की ओर अग्रसर होना आवश्यक था। उपन्यासकारो का उद्देश्य कथानक की गति और दिशा का निर्धारण करना रहा है। यह कहना ठीक है कि लक्ष्य का ज्ञान ही कथानक है।"[१]

उपन्यास एक काल कला है। उसकी घटनाए काय-कारण शृङ्खला क साथ साथ काल क्रम म बधी रहती हैं। कथा की अवधि कई वर्षों स लेकर कुछ घण्टो तक रह सकती है। उसम पूरे समाज का या एक परिवार का या कुछ पात्रो का विकास एव परिवतन दिखाया जा सकता है। तिलस्मी ऐयारी उपन्यासो म बहुधा कथा का विस्तार एक से अधिक पीढियो तक है। कुछ उपन्यास कल्पित जीवनी के समान लगते हैं। नर नारी जन्म लेते है बड होते हैं और मर जाते है। उपन्यास के आदि अन्त की स्थितियों मे अन्तर होता है। हनुमन्त सिंह की मेरी दुख गाथा एक व्यक्ति क सम्पूण जीवन की झाँकी है। कथानायक जन्म लेकर शिक्षा प्राप्त करता है विवाह के बाद एक मारवाडिन युवती पर बलात्कार करने के अपराध मे जेल जाता है जेल स छटन पर देश सेवा म जीवन की अन्तिम घडियाँ बिताता है। इसी प्रकार किशोरीलाल गोस्वामी की लीलावती बालिका से प्रेमिका और प्रेमिका स माँ बन जाती है। वह जब पचास बरस की हो जाती है उसके जीवन म कोई उल्लेख योग्य घटना शेष नहीं रहती। अवधनारायण की 'विमाता म रघन न्दन क बचपन स सुखी विवाहित जीवन तक की कथा है। कुछ उपन्यास जीवन क अल्प काल को लेकर लिखे गये हैं जसे चाँदकरण शारदा का कालेज होस्टल नायक क विद्यार्थी जीवन का चित्र उपस्थित करता है। कुछ उपन्यासो का कथाकाल दिनो और घण्टो तक सीमित है। परीक्षागुरु म केवल पाँच दिनो की कथा है गोस्वामीजी लिखित

'लालकुँवर' में केवल एक रात का।

जहाँ काल का विस्तार होता है वहाँ कुछ घटनाएँ दृश्य होती हैं, कुछ सूच्य। 'मेरी दुख गाथा' में सात वर्षों की क्रिया को एक वाक्य में बाँधने का प्रयास किया गया है जैसे 'सात वर्ष के कारादण्ड से मेरे सब पापों का प्रायश्चित हो चुका।' 'लीलावती' में चौथे परिच्छेद का अन्त होने पर पन्द्रह वर्षों के बाद पाँचवाँ परिच्छेद आरम्भ होता है। बीच की घटनाओं को यह कहकर छोड़ दिया जाता है कि वे उल्लेखनीय नहीं हैं। जीवन की प्रत्येक वस्तु का वर्णन साहित्य में न तो सम्भव है, न वांछनीय ही। वर्षों की बात थोड़े शब्दों में कह दी जा सकती है और एक दिन की बात के लिए अनेक पन्ने रँगे जा सकते हैं। कलाकार को कुछ छोड़ना और कुछ ग्रहण करना पड़ता है। कला में पसन्द और चुनाव जरूरी है। उपन्यास में संक्षिप्त उल्लेख के द्वारा दृश्य और सूच्य घटनाओं में संगति मिलानी पड़ती है। इसके विपरीत नाटक में जहाँ केवल दृश्य होते हैं घटनाओं की शृंखला सहज ही जुड़ती चलती है। कभी-कभी उपन्यासकार संकेत से जितना प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं उतना वर्णन से सम्भव नहीं होता। 'विमाता' के तीसरे अध्याय में सुभद्रा की मृत्यु के वर्णन के बाद चौथे अध्याय का प्रथम वाक्य (सुभद्रा के परलोकवासी हुए ग्यारह वर्ष हो गए।) पढ़कर पाठक विस्मय विमुग्ध हो जाता है। एक छोटा-सा वाक्य वर्षों की रिक्तता भरता है और कथा की गति को मोड़ देता है। इस प्रकार की औपन्यासिक अभिव्यक्ति ही एक मधुर घटना बन जाती है। साधारणतः लम्बी अवधि के छोटे उपन्यास में कसाव रहता है छोटी अवधि के बड़े उपन्यास में शिथिलता।

पुरानी कहानियाँ कौतूहल जगाकर मनोरंजन करने का साधन थीं। उनमें घटनाओं का अविराम प्रवाह रहता था और पाठक या श्रोता उसमें मुग्ध होकर बहते जाते थे। यह गुण उपन्यास में भी अक्षुण्ण रहा किन्तु जहाँ पुरानी कहानियाँ सरल बाल जिज्ञासा को शान्त करती थीं वहाँ उपन्यास उससे आगे बढ़कर पाठकों की कल्पना और बुद्धि को भी उद्दीप्त करने लगे। बुद्धि-तत्व के समावेश से रोचकता में कमी नहीं हुई बल्कि हास्यरस के लिए विशेष अवकाश मिला। कविता के लिए हास्यरस आवश्यक नहीं लेकिन उपन्यास के लिए तो अनिवार्य है। हमारे पुराने उपन्यासकार हँसना हँसाना खूब जानते थे। देवकीनन्दन खत्री की लोकप्रियता का एक कारण उनकी हास्यप्रियता है।

उपन्यास को रोचक बनाने के लिए कथानक की योजना की जाती है। इसके लिए पहले कथा को जटिल और रहस्यमय बनाना आवश्यक समझा जाता था। आरम्भिक अंश से घटनाओं की गुत्थियाँ सजाकर उत्कंठा जगाई जाती थी और अंतिम भाग में उन्हें सुलझाकर शांत की जाती थी। गहमरीजी ने रहस्यमयता को उपन्यास का आवश्यक गुण मान लिया था

उपन्यास में पहिले जानने योग्य बात घटना की जवनिका में छिपा रखना और इधर उधर की जो बेसिलसिले और बेजोड़ न हों पहिले कहना और घटना पर घटना का तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिये पाठकों के हृदय में कुतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना पूरा स्वाद न मिले लेकिन पढ़ने वालों को ऊब न हो बल्कि जितना पढ़ता जाय उतना ही उसमें उत्सुकता जाय।[30]

भोले भाले नये पाठकों को उलझाये रखने के लिए निपुण उपन्यासकार कथा के रहस्य को धीरे धीरे खोलते थे जैसे कोई रसिक वर वधू के घूँघट को हटाते हटाते हटाता है। वे उपन्यास में स्वयं आकर दर्शन देते थे और अधीर पाठकों को समझाने की कोशिश करते थे

एस दोपहर के समय यह क्या घर से निकला और क्या इसका मन सूखा था इसका रहस्य जानने के लिए कौन न उकताता होगा किंतु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखकों की रीति के विरुद्ध है इससे इस प्रस्ताव का यहीं समाप्त करते हैं।[31]

सहसा रहस्य का उद्घाटन उपन्यास लेखकों की रीति के विरुद्ध है यह कहकर भट्टजी ने बड़े पते की बात कही है। एकबारगी कथा कह देने से कथा रस जाती है, उसकी रोचकता नष्ट हो जाती है कौतूहल समाप्त हो जाता है और पाठक को अनुमान तथा प्रत्याशा करने का अवसर नहीं मिलता। उपन्यासकार का कौशल इसमें है कि वह घटनाओं को इस प्रकार सम्बद्ध करे कि जो पहले अप्रत्याशित हो वह बाद में अवश्यंभावी प्रतीत हो। आदिकालीन उपन्यासकार बहुधा अपनी रचनाओं में आरम्भिक भाग में अप्रत्याशित और अंतिम भाग में अवश्यंभावी को स्थान देते थे। वे पाठकों को मुग्ध करने के लिए कथानक को पेचीदा बनाना उचित समझते थे। लेकिन इससे पाठकों के मन में उलझन और ऊब भी पैदा होती है। रहस्य को तुरत प्रकट कर देना उतना ही अवांछनीय है जितना रहस्य की अनावश्यक सृष्टि करना। कथानक की जटिलता रहस्यमय उपन्यासों की शोभा हो सकती है तो अन्य प्रकार के उपन्यासों के लिए घातक भी। रहस्यमयता को आधार

मानकर चलने में चरित्राकन की अपेक्षा आकस्मिक घटनाओं को अधिक और अनावश्यक महत्व मिल जाता है। सरल कथानक की कल्पना उतनी ही रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है जितनी जटिल कथानक की योजना। सरलता कथानक का बहुत बडा गुण है। यह आवश्यक नहीं कि सरलता केवल सरल कथानक में ही मिले मे नहीं हो। किशोरीलाल गोस्वामी ने कई उपन्यासों में दो समानान्तर कथाओं को मिला दिया है अथवा अनेक कथा सूत्रों को गुम्फित किया है फिर भी कथानक पेचीदा नहीं होने दिया है। उपन्यास का इतिहास यही बताता है कि उसमें कथानक का क्रमश ह्रास होता गया है और आज तो वह उपेक्षा की वस्तु बन गया है।

उपन्यास की शक्ति कथानक पर और उसकी सुन्दरता ढाँचे पर निर्भर है। एक बुद्धि को अपील करता है दूसरा सौन्दर्यबोध को। ढाँचा भिन्न भिन्न तत्वों के सामञ्जस्य से बनता है किन्तु कथानक से उसका अभिन्न सम्बन्ध होता है। कविता नाटक और निबन्ध की तरह उपन्यास के ढाँचे की ओर पाठकों का ध्यान अनायास नहीं जाता क्योंकि उसके अध्ययन में वे प्रभाव ऐक्य पर विचार नहीं करते। यदि पढ़ने के समय उसकी पूर्णता की ओर कुछ ध्यान जाता है तो पन्ने के बाद उसका आंशिक स्मरण ही रह जाता है। हेनरी जेम्स ने उपन्यास के सभी अंगों के संतुलन को अत्यधिक महत्व दिया है और इस दृष्टि से रखकर उपन्यास की केवल दो कोटियाँ निर्धारित की हैं जीवित और जीवनहीन।[३२] जीवित उपन्यास का कथानक सुघर और सुसबद्ध होता है। कथाविन्यास की दृष्टि से दो प्रकार के उपन्यास माने जाते हैं, शिथिल या सुगठित कथानक के उपन्यास। इनमें दूसरा प्रकार लेखक की सुचिंतित परियोजना और निर्माण-कौशल का परिचय देता है। उसमें कृत्रिमता का आभास रह सकता है किन्तु उसका रूप-सौष्ठव बौद्धिक आनन्द प्रदान करता है। उपन्यास का सुन्दर ढाँचा सुगठित कथानक का ढाँचा है जिसमें अनावश्यक विस्तार या संक्षेप नहीं होता साधारण बातें भी सरल लगती हैं असाधारण परिस्थितियों में भी वास्तविकता का आभास मिलता है घटनाओं का आरम्भ, विकास और समाहार सहज स्वाभाविक होता है और विषय तथा स्वरूप अभिन्न होते हैं। चन्द्रकान्ता विमाता और प्रमा' का ढाँचा अत्यन्त सुघर है।

उपन्यासकार अपने कथाकौशल से पाठकों के हृदय का कोमल कोना छूकर उन्हें उपन्यास की सुन्दरता से प्रभावित होने योग्य बनाता है। अच्छा

उपन्यास अच्छी तरह कही हुई कहानी है। नाटक म कहानी कहने का एक ढग है उपन्यास में उसके एक स अधिक ढग हैं। पुरानी कथा परम्परा म मुख्यत पुराण शली और कथामाला शली का अनुसरण किया गया है। पुराण शली म एक व्यक्ति दूसर व्यक्ति को कथा सुनाता है और कथाकार उस कथा को दुहराना है। 'नासिकेतोपाख्यान' में वशपायन मुनि राजा जनमेजय को कथा सुनात हैं सदलमिश्र तो कवल रिपोटर हैं। इस पद्धति म मुख्यकथा तक पहुचने म पाठक को बहुत प्रतीक्षा करनी पडी है। कथाकार उसकी कथा सुनाने लगता है जिसन कथा सुनाई थी। पचतत्र आलिफ लला म प्याज के छिलके क समान एक कहानी स दूसरी कहानी निकलती है। उपन्यास म इन पद्धतियो का अनुकरण नही किया गया है इनका परिवर्तित रूप कही कही अवश्य मिलता है। कुछ रचनाओं म कथा का आरम्भ आरम्भ के पहले हो जाता है जस बालकृष्ण भटट की रहस्यकथा और मन्नन द्विवेदी का कल्याणी। दोनो मे बटे पोत की कथा स्वर्गीय बाप-दादे स ही शुरू की गई है। बहुत स उपन्यास एक से अधिक कथानक लेकर चलते हैं। दो या तीन कथाओ का क्रमिक या समानान्तर विकास होता है। उनमे एक मुख्य होता है और दूसरा विरोध या सामजस्य विश्राम या विविधता उपस्थित करता है। अन्त म उनकी अन्विति हो जाती है। उपन्यास म कहानी दर कहानी का सिलसिला नहीं रहता है यदि रहता है तो दूसरे रूप म जसे परीक्षागुरु म छोटी छोटी कहानियाँ पूर्ण इकाई के रूप मे नहीं बल्कि दृष्टान्त क रूप म हैं। कभी कभी उपन्यासकार रोचकता के लिए कोई छोटी कहानी उपन्यास म जोड देते हैं। यह प्रणाली अभी भी पुरानी नहीं हुई है।

उपन्यास में उपन्यास का विन्यास एक विलक्षण कथाशिल्प है। इसका पुराना प्रतिरूप पौराणिक कथाओ म पाया जाता है। भाग्यवती और परीक्षागुरु म इसका प्रारम्भिक रूप है। भाग्यवती म एक राजा एक पडितजी का एक ऐसी पुस्तक लिखन के लिए कहते हैं जिसे पढकर लोग धोखे म नही आ सकें। पडितजी कौतुक सग्रह नामक ग्रथ लिखकर देते हैं जो भाग्यवती के अनुरूप ही है। परीक्षागुरु क अन्त मे उसका नायक अपने शुभचितक मित्र को अपना वृत्तात प्रकाशित करा देने का अनुरोध करता है। उसका वृत्तात तो उपन्यास ही है। यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करने का यह अच्छा उदाहरण है। मनोहरलाल लिखित 'कांतिमाला' और गोपाल लाल लिखित अलबेला रागिया म इस शिल्प का कलात्मक उत्कर्ष है।

पुस्तक की 'प्रस्तावना' में गंगा किनारे उपवन के बीच प्रासाद में पलंग पर लेटी हुई एक षोडशी पूर्णचन्द्र की शोभा देख रही है कि एक पच्चीस वर्षीय युवक पीछे से उसकी आँखें बन्द कर देता है। युवती के यह पूछने पर कि युवक इतनी रात तक क्या कर रहा था युवक जवाब देता है कि वह एक उपन्यास लिख रहा था। हास परिहास के बाद युवक युवती के हाथ में एक पुस्तक रख देता है जिस पर अपना नाम देखकर वह मुस्कुरा उठती है और बड़े चाव से पढ़ने लगती है। अन्त में लेखक लिखता है 'बस उपन्यास समाप्त हो गया। पूर्वोक्त गंगा तटस्थ उपवन के उन्नत आगार की उच्च अट्टालिका पर बैठकर चन्द्रमा की शोभा को देखने वाली तथा पति से प्रेम कलह करने उपरान्त पति का दिया हुआ उपन्यास बड़े प्रेम से देखने वाली षोडष वर्षीया बालिका कान्तिमाला ने जिस समय पुस्तक समाप्त किया रात आधी से अधिक जा चुकी थी'। जब उससे पति पूछता है कि उपन्यास कैसा है तो वह कहती है कि वह तो उन दोनों का जीवन वृत्तान्त है। फिर वह कहता है कि उनके जीवन की घटना भी एक उपन्यास की घटना से कम नहीं है इसलिए उसने उपन्यास लिखा। अल्बेला रागिनी का अन्त होने पर उस उपन्यास का भी अन्त हो जाता है जो एक स्त्री पात्र द्वारा अवसर पढ़ा जाता है। दोनों की घटनाओं में समानान्तरता दीख पड़ती है। जहाँ कहीं इस कौशल का उपयोग किया गया है वहाँ लगता है कि पाठक के सामने कोई कलाकृति न होकर स्वयं जीवन है और उपन्यास की रचना करना उपन्यास की एक घटना है।

कथा शैली से कथाकार और उसकी कृति का सम्बन्ध सूचित होता है। नाटक में नाटककार दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु उपन्यास में उपन्यासकार स्वयं कहानी कहता है, पात्रों के मुँह से कहलाता है तथा कभी कभी प्रकट होकर अपना मत देता है। उपन्यास में उसका स्रष्टा ईश्वर की भाँति व्यक्त होने पर भी अव्यक्त रह सकता है और केवल पात्रों एवं उनके क्रियाकलाप का प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। अन्यपुरुष में कथा कहने की विधि सर्वाधिक सरल प्राचीन और प्रचलित है। उपन्यासकार इतिहासकार और महाकाव्यकार की भाँति प्रत्यक्ष ढंग से कहता है। वह सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है। वह दृश्य जगत के अतिरिक्त अन्तर्जगत का भी द्रष्टा माना जाता है। वह वार्तालाप में अव्यक्त रहता है किन्तु वर्णन में उसका व्यक्तित्व उभर आता है। पुराने उपन्यास-लेखक वार्तालाप में भी कभी-कभी प्रकट हो जाते थे।[३३]

लेखक के तटस्थ रहने पर कथा का प्रवाह सहज स्वच्छन्द होता है। जब वह कथानक के बीच में टपक पड़ता है पाठकों का भ्रम नष्ट हो जाता है और कथा की गति शिथिल हो जाती है। यही इस पद्धति का उल्लेखनीय गुण और दोष है। पुराने उपन्यासकार पाठकों को कुछ कहे बिना रह नहीं सकते थे शायद इसलिए यह शैली उन्हें विशेष प्रिय थी। यदि कहानी किसी एक पात्र के दृष्टिकोण से कही जाती है तो इस पद्धति में भी उत्तम पुरुष वाली पद्धति की विशेषता आ जाती है।

उत्तम पुरुष की शैली में लेखक और पात्र का तादात्म्य हो जाता है। कथा एक प्रधान पात्र या गौण पात्र या अनेक पात्रों से कही जा सकती है। एक व्यक्ति (खासकर प्रधान पात्र) द्वारा कही गई कथा आत्मचरित या आपबीती जैसी लगती है। उदाहरण के लिए ठाकुर हनुमन्त सिंह की चन्द्रकला और किशोरीलाल गोस्वामी के माधवीमाधव में क्रमशः नायिका और नायक द्वारा कथा कही गई है। आत्मकथा-शैली में स्पष्टता और सत्याभास के गुण अनायास आ जाते हैं। घटना प्रधान उपन्यासों में जहाँ वास्तविकता का रंग रहना आवश्यक है इसकी उपयोगिता देखी जाती है। आश्चर्यवृत्तान्त में एक पात्र अपने कल्पित भ्रमण का वर्णन इस तरह करता है कि उसमें अविश्वास करना कठिन है। रहस्य का उत्तरोत्तर उद्घाटन कराने के लिए एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा कथा कहाने की विधि रहस्यमूलक उपन्यासों के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है। आलोच्य-काल के जासूसी उपन्यासों में इस विधि का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। भावात्मक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों को मैं शैली से मोह होना स्वाभाविक है। वे अपनी ओर से वर्णन विश्लेषण करने के बदले पात्रों के स्वगत-कथन से उनके व्यक्तित्व का निरूपण करते हैं। ब्रजनन्दनसहाय के प्रायः सभी उपन्यास इसी शैली में हैं। इसमें रचयिता को बीच बीच में दर्शन देने की जरूरत नहीं होती। उसे जो कुछ कहना होता है पात्रों के स्वर में कह देता है। यह परोक्ष ढंग उपन्यास को नाटक के निकट ले आता है।

इस पद्धति की अपनी सीमाएँ हैं। कथा कहने वाला पात्र पृष्ठभूमि में चला जाता है और *अभिनय करने वाला पात्र ध्यान आकर्षित कर लेता* है। यदि अभिनेता कथानायक बनता है तो स्वाभाविकता और संगति पर आघात होता है। लेखक कथावाचक पात्र को मार नहीं सकता न ही उसे निजी अनुभव और पर्यवेक्षण की सीमा से बाहर होने दे सकता है। इस

कठिनाई को दूर करने के लिए अनेक व्यक्तियों से कथा कहाई जा सकती है लेकिन एकसूत्रता लाने के लिए असाधारण रचना कौशल की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि एक पात्र की आत्मकथा के रूप में लिखित उपन्यास के ही अनेक उदाहरण मिलते हैं।

रामचीज सिंह की 'कुलवन्ती' दो पात्रों-नायक और नायिका के मुख से कथित आत्म-वृत्तान्त का उत्कृष्ट उदाहरण है। एक जगह एक साधु एक मोदिआइन और एक लड़का आ मिलते हैं। लड़के का साधु कहता है कि वह किस तरह घर छोड़कर साधु बन गया और उसकी स्त्री लोकापवाद के कारण घर से भाग निकली। मोदिआइन कहती है कि वह कुन्ती नाम की एक लड़की को जानती है जो घर में निकल गई थी। फिर साधु बताता है कि वह भी कुलवन्ती का हाल जानता है। उसका पति एक रात अपनी ससुराल छिपकर गया, जिससे कुलवन्ती को गर्भ रह गया और उसने बदनामी के डर से घर छोड़ दिया। मोदिआइन आगे कहती है कि कुलवन्ती ने घर छोड़ने के बाद एक भिखारिन के हाथ अपने पुत्र को बेच दिया। इस प्रकार जब कहानी पूरी होती है तब यह भेद खुलता है कि मोदिआइन कुलवन्ती है साधु उसका पति है और वह लड़का उसका पुत्र है। ब्रजनन्दनसहाय ने 'राधाकान्त' की कथा दो खंडों में दो पात्रों द्वारा कहाई है और परिशिष्ट लिखकर सम्बद्धता स्थापित की है। चन्द्रशेखर पाठक के वारांगना रहस्य में कई पात्र बारी-बारी से अपनी अपनी कथा सुनाते हैं। एक की कथा अधूरी रहती है कि दूसरे की शुरू हो जाती है। यह क्रम अन्त तक चलता है। इससे कथानक जटिल और रसहीन हो गया है। सिलसिला मिलाने के लिए पुनरुक्ति का आश्रय लेना पड़ा है। पात्रों का आत्म विश्लेषण अस्वाभाविक और उपदेश-कथन नीरस लगता है। पाठक को कथा का क्रम और सगति मिलाने में कठिनाई होती है। ये दोष जो इस प्रकार के उपन्यास में अक्सर पाये जाते हैं, 'चन्द्रकान्ता सतति' को स्पर्श नहीं कर सके हैं। इस विधि की सबसे बड़ी कठिनाई चरित्र चित्रण में है। प्रधान पात्र अन्य पात्रों का विश्लेषण नहीं कर पाता है और अपना विश्लेषण कर सकता है तो अत्यन्त प्रगल्भ या अत्यन्त विनम्र होकर ही जो अस्वाभाविक लगता है। जहाँ गौण पात्र ऐसा करता है वहाँ ऐसी कठिनाई नहीं होती है।

पत्र और डायरी के माध्यम से कथन आत्मकथा शैली का ही रूपान्तर है। इसलिए इसके पृथक प्रयोग की विशेष आवश्यकता और उपयोगिता

नही होती। इनकी दो विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। इनमें आत्मीयता का स्वर रहता है और विस्तृत वर्णन की गुंजाइश रहती है। लेखक व्यक्तिगत अनुभूति का गहनतम रूप और दैनिक जीवन का सूक्ष्मतम विवरण प्रस्तुत कर सकता है। आलोच्यकाल में पत्र या दैनिकी के रूप में एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा गया, उनका प्रयोग पूरक विधियों के रूप मे ही हुआ है जो स्वाभाविक भी होता है। 'श्यामास्वप्न' इसका अन्यतम निदर्शन है। किसी घटना के घटने पर उसका वर्णन तुरत किया जाय तो उसमें स्पष्टता और तात्कालिकता का गुण आ जाता है जो श्यामास्वप्न मे है। सुरबाला (साहित्य पत्रिका १९१२-१३) एक पत्रात्मक उपन्यास है किन्तु उसकी मौलिकता संदिग्ध है। अधिकांश प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने इतिहास-प्रधानों में पत्रों का बहुधा व्यवहार किया है किन्तु उनसे कथा के विकास में नहीं बल्कि भ्रम के उत्पादन में सहायता मिली है।

महाकाव्यात्मक, आत्मकथात्मक और लेख्यात्मक पद्धतियाँ क्रमशः घटना प्रधान, चरित्र प्रधान और भाव प्रधान उपन्यासो के लिए विशेष उपयुक्त हैं। प्रत्येक पद्धति में कुछ गुण कुछ दोष हैं। कुशल उपन्यासकार एक के अभाव की पूर्ति द्वितीय की सहायता से करता है। प्रथम पद्धति से जीवन का चित्रण वास्तविकता, सम्पूर्णता और वस्तुनिष्ठता के साथ किया जा सकता है। उसमें लेखक को अपना कौशल दिखाने का अधिक अवसर मिलता है। विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासकारो में फील्डिंग, स्काट, जेन आस्टन, हार्डी, डिकेंस, थकरे, टालस्टाय, दास्तावेस्की, गार्की, बाल्जक, विक्टर ह्यूगो, जोला, फ्लाबेक, देवकीनंदन खत्री, प्रेमचंद, प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा, यशपाल और शरत्चन्द्र को यह प्रिय शैली है।

उपन्यास में कथा का विकास वर्णन और वार्तालाप से होता है और वार्तालाप भी आत्मकथा का ही एक ढंग है। अन्य पुरुष शैली में व्याप्ति और सम्भावना है। उपन्यासकार वर्णन, विश्लेषण, व्याख्या और वार्तालाप का उपयोग स्वतंत्रता एवं सुविधा के साथ करता है। मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण के लिए भी यह शैली अधिक उपयुक्त होती है। सर्वज्ञ लेखक सभी पात्रो के मन का विश्लेषण तटस्थता से कर सकता है।

कथा कहने की विधियो का विकास कालक्रम से नहीं हुआ है।[34] हिन्दी-उपन्यास के उदयकाल में ही सभी विधियो के उदाहरण मिल जाते

हैं। एक 'श्यामास्वप्न' में ही आत्मकथा, दैनिकी और पात्र की शैलियों की समष्टि है। प्रेमचन्द-काल तक अन्यपुरुष में कथा कहने की विधि अत्यधिक प्रचलित रही। जैनेन्द्र ने परम्परा से अलग होकर 'मैं' शैली को ग्रहण किया और उसे कलात्मक रूप प्रदान करने की चेष्टा की।

कथा प्रस्तुत करने की नाटकीय विधि सर्वोत्तम विधि मानी जाती है। वार्तालाप में उपन्यासकार अव्यक्त रहता है, इसलिए उसमें नाटकीयता है किन्तु नाटकीयता वार्तालाप तक सीमित न होकर वर्णन के अंश में भी है। उपन्यासकार अपनी ओर से नहीं कहता है, कहानी को कहने देता है। पाठक को उसकी उपस्थिति का भान नहीं होता है। वह किसी वस्तु का इस प्रकार वर्णन करता है कि पाठक को नाटकीय वर्तमानता और प्रत्यक्षता की अनुभूति होती है। जिस उपन्यास में सारांश (समरी) कम, दृश्य अधिक होते हैं उसका कथानिरूपण नाटकीय होता है। दृश्य वार्तालाप के बिना भी रह सकते हैं। वार्तालाप के उपयोग से अधिक वस्तुनिष्ठता आती है। जहाँ उपन्यासकार तुरत कथा आरम्भ कर देता है और व्याख्या को, जिसका सम्बन्ध अतीत से होता है, छोड़ देता है वहाँ वह नाटककार के निकट आ जाता है।

नाटकीय या परोक्ष विधि पुरानी कहानी और उपन्यास में भेद प्रकट करती है। पुरानी कहानी की भाँति उपन्यास का सम्बन्ध भी बीती हुई घटनाओं से है पर जहाँ एक में घटनाओं का वर्णन ऐतिहासिक रीति से किया गया है वहाँ दूसरे में नाटक के समान अतीत की घटनाएं वर्तमान में घटती हुई दिखाई गई। उपन्यासकार का कौशल इसमें नहीं है कि वह जो हो चुका है उसकी सूचना दे वरन् इसमें है कि वह नाटककार की तरह आँखों के सामने घटनाओं को घटित होते हुए दिखाए। पात्रों के अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण में जहाँ नाटककार असमर्थता का अनुभव करता है वह अपने कौशल का विशेष चमत्कार प्रदर्शित करता है। लुबॉक ने कथा-शैली को अत्यधिक महत्त्व देते हुए लिखा है कि जब तक कहानी स्वयं नहीं कहती है तब तक कला आरम्भ नहीं होती है।[३४] जब उपन्यासकार उपन्यास के बीच बीच में प्रकट नहीं होता और कथा का स्वतः उद्घाटन होता चलता है तब वह सफल कलाकार होता है।

पात्र

उपन्यास पुरानी कथा-कहानी की तरह केवल यह नहीं कहता कि

गया हुआ बल्कि यह भी कहता है कि क्यों हुआ किसे हुआ। केवल कौतूहल वधक घटनाओं का जाल बिछाकर पाठक को अधिक काल तक उलझाकर नहीं रखा जा सकता। मन रमाने के लिए कथा तत्त्व के साथ-साथ मानव तत्त्व चाहिए। उपन्यास-लेखकों ने देवी-देवता भूत प्रेत, पशु-पक्षी राजकुमार राजकुमारी के बदले सामान्य नर-नारी को केन्द्रबिन्दु बनाकर मनुष्य के प्रति मनुष्य की सहज उत्कंठा को तप्त किया घटना और चरित्र में सम्बन्ध स्थापित किया और कथानक को सजीवता एवं सार्थकता प्रदान की। प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र कहकर उसके मर्म की ओर संकेत किया था तथा उसे घटना प्रधान कथा कहानी से अलग कर ऊँचाई पर पहुँचाया था। रानी केतकी की कहानी हातिमताई आदि की भाँति उपन्यास में घटना किसी बाह्य और अदृश्य शक्ति से उत्पन्न नहीं हुई है। उसमें चरित्र से घटना और घटना से चरित्र का विकास होता है। पुरानी कथाओं में मनुष्य अतिप्राकृत शक्तियों के ताल पर नाचते थे इसलिए घटनाएँ चरित्र निरपेक्ष हुआ करती थीं। उपन्यास में मानवीय नाटक का सूत्रधार मानव को ही बनाया गया था इससे चरित्र ही विधाता है यह उक्ति चरितार्थ हो सकी। यदि उसमें अतिप्राकृत तत्त्वों को स्थान भी मिला तो वे मानव जीवन का अंग बनकर रहे। उन्हें मानवीय भावों से आन्दोलित होते हुए दिखाया गया सामाजिक परिवेश में उपस्थित किया गया और कान्यगत न्याय का भागी बनाया गया। पहले कथाओं में जो प्रभाव अलौकिक घटनाओं के समावेश से उत्पन्न किया जाता था वह उपन्यास में छद्म वेश संयोग देवयोग आदि कृत्रिम साधनों से किया गया।

पुरानी कहानियाँ बिना मुसाफिर की गाड़ियाँ नहीं थीं लेकिन मुसाफिर अजनबी और अनोखे थे। उनमें नर-नारी दर्शन भी देते थे तो उनका व्यक्तित्व उभरकर सामने नहीं आता था। जिस तरह दैनिक जीवन में किसी व्यक्ति का परिचय उसके नाम से मिलता है उसी तरह कथात्मक पात्र को टाइप के बदले व्यक्ति के रूप में उपस्थित करने वाला उसका नाम होता है। पात्र का नामकरण चरित्र चित्रण की पहली आवश्यकता है। पूर्ववर्ती कथाकार अपने पात्रों को राजा रानी श्रेष्ठ साहूकार ठग चोर साधु-संन्यासी कहकर काम चला लेते थे यदि नाम देते थे तो पशु पक्षी को भी कान्यात्मक और पुरुष-स्त्री को भी प्रतीकात्मक नाम देते थे जैसे करालकेसर और धूसरक नामक सिंह और सियार (पचतंत्र) हुस्न और इश्क (सबरस)।

उपन्यास में पात्रों के नाम वास्तविक जीवन के अनुरूप रखने का यत्न किया गया, जिससे उनमें वास्तविकता का आभास हुआ। जहाँ गुणवाचक नाम का प्रयोग किया गया वहाँ संज्ञा को विशेषण नहीं बनने दिया गया। समष्टित नाम वर्ग और व्यक्ति के बोधक हुए। कुछ उपन्यासकारों ने नवीन और विलक्षण प्रयोग किए जो कल्पना से यथार्थ, असाधारण से साधारण की ओर आने में प्रयास थे। इंशा ने मालिन को 'फूलकली' ('रानी केतकी की कहानी') और बालकृष्ण भट्ट ने दासी को 'गुलबिया' (रहस्यकथा) कहकर पुकारा है। दोनों फूल हैं पर एक में कल्पना का रंग है, एक में मिट्टी की गन्ध। देवकीनन्दन खत्री ने चन्द्रनाथ, चुन्नीलाल, पन्नालाल और रामनारायण के रूप में अपने परिचितों और मित्रों को 'चन्द्रकान्ता' के पन्ने पर उतार दिया। इन पात्रों के कारण 'चन्द्रकान्ता' में जैसा सत्याभास है वैसा उसके प्रतिरूप 'तिलिस्म होशरुबा' में नहीं हो सकता। प्रेमचन्द की 'प्रेमा' का नायक धनपतराय का पुत्र, अमृतराय है। इससे बढ़कर सत्य क्या हो सकता है? परिचित नामधारी पात्र पाठकों का ध्यान तत्क्षण आकृष्ट कर लेते हैं। आलोच्यकाल के विदेशी भाषा से अनूदित उपन्यासों में भी पात्रों के नाम भारतीय बना लिए गए हैं।

नामकरण चरित्रचित्रण की सरलतम विधि है। उपन्यास में अन्य विधियों का भी प्रयोग किया गया है। उन्हें क्रमानुसार विश्लेषणात्मक और नाटकीय कहा जाता है। पहली विधि में उपन्यासकार स्वयं पात्रों के बहिरंग और अन्तरंग का वर्णन विश्लेषण करता है तथा कभी कभी उनके सम्बन्ध में व्याख्या और निर्णय भी प्रस्तुत कर देता है। दूसरी विधि में पात्र स्वयं अपने कथन और क्रिया में अपने को प्रकट कर देते हैं तथा कभी-कभी उनके सम्बन्ध में अन्य पात्र भी अपना मत व्यक्त करते हैं। पहली विधि गौण पात्रों के लिए विशेष उपयुक्त होती है। मुख्य पात्रों के लिए दोनों का सम्मिश्रण समीचीन होता है। विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष प्रणाली से चित्रण में स्पष्टता और सजीवता आती है किन्तु उसके अनावश्यक या अधिक प्रयोग से कथाप्रवाह में बाधा होती है तथा पाठकों की आत्म निर्णय की स्वतन्त्रता नहीं रहती है। नाटकीय या परोक्ष प्रणाली से चित्रण यथार्थ एवं कलात्मक होता है किन्तु उपन्यासकार विचाराधिकार से वंचित हो जाता है। कुछ आलोचक प्रथम प्रणाली से द्वितीय को अधिक महत्त्व देते हैं पर उपन्यास की विशिष्टता प्रथम में ही निहित है। बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जाराम शर्मा और मन्नन द्विवेदी ने प्रथम ढंग को तथा देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम

गहमरी और अवधनारायण ने परोक्ष ढग को प्रधानता दी है। किशोरी लाल गोस्वामी और प्रमचन्द न दोनो का समान रूप से उपयोग किया है। ऐतिहासिक दृष्टि स चरित्रचित्रण की पद्धति का विकास स्थूलता से सूक्ष्मता और प्रत्यक्षता से परोक्षता की ओर हुआ है। पहले उपन्यासकार पात्रो के भावों और विचारो का वणन कर देते थे बाद म उनका विश्लेषण करने लगे।

चरित्रचित्रण क विभिन्न तत्व परस्पर पूरक होते हैं और उनके मिश्रण से पात्रो का व्यक्तित्व सपूर्णता म उभरता है। बहिरग के विवरण स पाठको के मन मे पात्रो क सजीव चित्र अकित हो जाता है किसी व्यक्ति की वेशभूषा रूप रग एव आचार व्यवहार का वणन सामान्य रीति स या इस प्रकार किया जाता है कि विलक्षणता का बोध होता है। एक उपन्यास म बहुधा दो तीन पात्रो का ही सम्यक विश्लेषण किया जाता है। बहिरग के सविस्तार वणन से अन्तरग का सूक्ष्म विश्लेषण अधिक कौशल की अपेक्षा रखता है। कभी-कभी उपन्यासकार व्याख्या करने के बदले सकेत से ही स्थायी प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वार्तालाप और भाव भगी के सयोग म वक्ता का प्रत्यक्षीकरण होता है। वार्तालाप स क्रियाकलाप का महत्त्व कम नही होता है क्योकि कथन स क्रिया कम मुखर नही होती है। चरित्रचित्रण उपन्यास का अत्यन्त सजीव अग है। उसम सफल होने के लिए अनुभव की व्यापकता पयवेक्षण की सूक्ष्मता सहानुभूति की गहराई और कल्पना की उवरता वाछनीय है। इनके साथ साथ जब उपन्यासकार म मानवप्रकृति परखने की क्षमता और वणन करने की शक्ति होती है तब वह अविस्मरणीय पात्रो की सृष्टि कर पाता है। पात्रो म वास्तविकता विश्वसनीयता स्वाभाविकता मानवीयता और सजीवता होना चाहिए। वे कठपुतल न होकर अपना अस्तित्व रखते हो।

प्राचीन कथासाहित्य के पात्र प्रकार या प्रतीक होते थे। विविध परिस्थितियो म उनका उत्थान-पतन दिखाने का प्रयास नही किया जाता था। उनम शीलवचित्र्य नही था। उपन्यास मे मुख्यत तीन कोटि क पात्रो के दशन हुए सामान्य या प्रतिनिधि विशिष्ट और सावभौमिक। विमाता म एक ही व्यक्ति को घर और बाहर की भिन्न परिस्थितियों म रखा गया है। उसक व्यक्तित्व म उक्त तीन विशेषताए निहित हैं। फास्टर न पात्रो को दो श्रेणियो म रखा है सपाट (फ्लट) और गोल (राउन्ड)।[38]

सपाट पात्रों में एक ही विशेषता होती है जो प्रमुख और सामाजिक होता है। वे पहचान जाने योग्य और स्मरणीय होते हैं। गोल पात्र इसके विपरीत होते हैं वास्तविकता यह है कि कोई व्यक्ति न तो अत्यंत सपाट होता है न अत्यंत गोल। जो विचार या आदर्श के मूर्त रूप होते हैं उन्हें ही सच्चे अर्थ में सपाट कहा जा सकता है। पात्र स्थिर या गतिशील होते हैं। स्थिर पात्र परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होते गतिशील पात्र होते हैं। गौण पात्र सपाट और स्थिर होते हैं मुख्य पात्र गोल और गतिशील। स्थिर पात्र लघु उपन्यास के उपयुक्त होते हैं गतिशील पात्र विशाल उपन्यास के।

वार्तालाप

पात्रों की सजीवता और स्वाभाविकता वार्तालाप पर निर्भर है। संसार में पशु पक्षी और मूक निष्प्राण व्यक्ति ही बातचीत न करते हुए नहीं पाये जाते हैं। पूर्वकाल की कथाएं वर्णनात्मक कथाएं थीं। उनमें वार्तालाप का थोड़ा अंश रहना भी था तो मानुषिक और अमानुषिक पात्रों में बंट जाता था। अन्य बातों में मनुष्य और पशु में विभिन्नता होने पर भी बोलने में समानता थी। परम्परा-पालन के लिए पद्य में भी सम्वाद की योजना की जाती थी। उपन्यास में वार्तालाप का अधिकाधिक उपयोग किया गया और वह उपन्यास का आवश्यक अंग बन गया। इसके माध्यम से उपन्यासकार कथा, पात्र और दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हैं। इससे कथा में वास्तविकता चरित्र में स्वाभाविकता और उद्देश्य में वस्तुनिष्ठता का समावेश हुआ तथा उपन्यास में नाटकीयता आई। विविधता और विश्राम के लिए वार्तालाप का विशेष महत्त्व है। वर्णन का अंश वार्तालाप के लिए अवसर प्रदान करता है और वार्तालाप का अंश वर्णन के लिए विश्राम का काम करता है। कुशल उपन्यासकार दोनों के सन्तुलित उपयोग से प्रभाव डालते हैं। जहाँ वक्ता के नाम का उल्लेख या उसकी बाह्य चेष्टाओं का संकेत रहता है वहाँ वार्तालाप में क्षणिक विराम होता है। बाह्य चेष्टाओं का संकेत रहने पर पात्रों का प्रत्यक्षीकरण होता है। कुछ पात्रों की वाणी लेखक की वाणी प्रतीत होती है कुछ पात्रों की वाणी में उनके व्यक्तित्व की छाप होती है और वे अपनी वाणी से पहचाने जाते हैं। बड़े उपन्यास में प्रत्येक पात्र की वाणी में विभिन्नता का निर्वाह करना कठिन है। कभी कभी किसी व्यक्ति को सामूहिक चर्चा का विषय बनाकर उसका चरित्र चित्रण किया जाता है।

यद्यपि वार्तालाप का उपयोग केवल रोचकता की वृद्धि के लिए किया जा सकता है तथापि जब कथा और पात्रों के विकास से उसका सम्बन्ध नहीं रहता तब वह असंगत और अस्वाभाविक हो जाता है। उससे लेखक को विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है। कभी कभी उसका दुरुपयोग किया जाता है। लेखक प्रचार या प्रदर्शन के लिए अप्रासंगिक बातों की चर्चा छेड़ देते हैं। उनके पात्र बातचीत करना छोड़कर वाद विवाद करने लगते हैं। या भाषण देते हैं। पाठक कहानी सुनना चाहते हैं। साहित्य दर्शन राजनीति आदि के विषय में अनावश्यक लम्बा कथोपकथन उन्हें अच्छा नहीं लगता। इस दोष का परिहार वहीं होता है जहाँ पात्रों के सिद्धान्त उनके बौद्धिक धरातल के अनुकूल होते हैं। पुराने उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी और ब्रजनन्दनसहाय प्रचार के लिए तथा नये उपन्यासकारों में इलाचन्द्र जोशी और देवराज प्रदर्शन के लिए अप्रासंगिक विषयों पर अनावश्यक वार्तालाप की योजना करते हैं। वार्तालाप साधारण हो या साहित्यिक उसे कथा के विस्तार का नहीं विकास का साधन होना चाहिए।

लोग जो कुछ बोलते हैं वह सार्थक और रुचिकर नहीं होता। इसलिए कथात्मक वार्तालाप वास्तविक जीवन के अनुरूप न होकर कलात्मक होता है। उसे प्रभावोत्पादक बनाने के लिए चुनाव और व्यवस्था की आवश्यकता होती है। उपन्यासकार की दक्षता इसमें है कि वह वार्तालाप को इतना वास्तविक न रखे कि सरसता नष्ट हो जाय और न इतना कलात्मक बनाये कि कृत्रिमता आ जाय। सफल वार्तालाप वह है जो वास्तविक न होते हुए भी वास्तविक प्रतीत हो। उसमें अनुकूलता उपयुक्तता स्वाभाविकता, सजीवता सार्थकता और रोचकता के गुण होने चाहिए। यथातथ्यवाद के आग्रह से पात्र स्थान और काल के अनुकूल वार्तालाप की भाषा का प्रयोग किया जाता है। उसकी दुरूहता दुर्बोधता और बहुलता कथारस में बाधक होती है। फैजाबाद की बेगम में अंग्रेज पात्र अंग्रेजी में बोलते हैं। चुन्नीलाल ज्योतिषी के गोखावारी रहस्य में स्थानीय बोली (राजस्थानी) का प्रयोग किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्र बहुधा उर्दू एमुअल्ला बघारते हैं।

वातावरण

उपन्यासकारों ने पात्रों को वाणी ही नहीं दी उनके रहने के लिए

संसार की भी रचना की। देश काल और पात्र परस्पर इस तरह सम्बद्ध हैं कि एक के बिना दूसरे की कल्पना करना कठिन है। पूर्वकालीन कथाओं में पात्रों के क्रियाकलाप के लिए स्थान और काल निर्धारित नहीं थे। उनका राजा किसी समय किसी देश के किसी नगर में रहता था। जादूगरनी और राक्षसी सात समुद्र के पार कहीं रहती थी। उनका संसार जादू और स्वप्न का संसार था। उपन्यास के पात्र देश काल की सीमा में बँधे होते हैं। देश काल की विशिष्टता आधुनिक उपन्यास का प्रमुख विशिष्टता है। इससे पात्र और उनके क्रिया व्यापार वास्तविक और विश्वसनीय लगते हैं और पाठकों का ध्यान उनमें केंद्रित होता है। नूतन ब्रह्मचारी में एक ही वाक्य में मानवीय काम का पृष्ठभूमि का संकेत दे दिया गया है

बनारस के मकान में नासिक से दस कोस पर एक जंगल में सांझ के समय तीन आदमी हथियारबंद घोड़े पर सवार आपस में कुछ बातचीत कर रहे थे।

यहाँ पात्र निश्चित स्थान काल में बातचीत करते हुए दिखाए गए हैं इसलिए उनका चित्र पूर्ण और जीवन्त हो उठा है। आरम्भिक उपन्यासों में पृष्ठभूमि की विशिष्टता का ऐसा ही उल्लेख रहता था। इन्दा की रानी मतकी जिस अमराई में अपनी सहेलियों के साथ झूल रही थी वहाँ केवल उपमान का घोड़ा ही पहुँच सकता था। रात के सन्नाटे में उनका चोरी चोरी मिलना मनस होकर भी सत्य प्रतीत नहीं होता है।

स्थान के नामकरण से पृष्ठभूमि की विशिष्टता अधिक स्पष्ट हुई। पुराने कथाकार किसी पर 'नगर' गढ़ और गाँव में कथा का इन्द्रजाल फैला देते थे। कुछ उपन्यासकारों ने भी पुर का प्रयोग किया है (जैनेन्द्र किशोर कमलिनी मेहता लज्जाराम शर्मा आदर्श दम्पति) किन्तु उन्होंने भौगोलिक सत्य का आभास दिया है। यह आवश्यक नहीं है कि उपन्यास में उल्लिखित स्थानों के नाम वास्तविक और परिचित हों। कल्पित नामों से भी वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है। स्थान कल्पित रहे हों या अपरिचित उपन्यास-लेखक ने उनका नाम रखकर उनका अस्तित्व सिद्ध किया। उन्होंने या तो वास्तविक स्थानों का कल्पित नाम दिए या कल्पित स्थानों को वास्तविक नाम। बहुतों ने प्रसिद्ध और सुपरिचित स्थानों को कथा का केन्द्र बनाया। आलोच्यकाल के उपन्यासों में काशी की चर्चा इतनी हुई है कि उनकी एक नायिका की कल्पना करनी है तो काशी की कल्पना

करनी चाहिए।

परिचित स्थानो की अपेक्षा नवीन या अपरिचित स्थानो म अधिक आकषण होता है। कुछ उपन्यास लेखको ने नवीन प्रदेशो या क्षेत्रो को चुना और उन्हे अपने उपन्यासो का घटनास्थल बनाया। इससे प्रादेशिक या *आंचलिक उपन्यासो का सूत्रपात हुआ। बालकृष्ण भट्ट हरिऔध गोपालराम* गहमरी और मन्नन द्विवेदी ने संयुक्त प्रांत ठाकुर जगमोहन सिंह ने मध्यप्रदेश भुवनेश्वर मिश्र अवधनारायण और जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने मिथिला के गावो की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने प्रकृति और मानव समाज का जो रूप अंकित किया है उसमे स्थानीय रग है। उपन्यास म स्थानीय रग का महत्त्व बन गया है। श्यामास्वप्न म ग्रामीण दृश्य का जसा स्वाभाविक किन्तु सुन्दर चित्रण है वसा प्राचीन कथासाहित्य म तो क्या समकालीन उपन्यासो म भी विरल है

पुराने टूट फूट शिवालें इस ग्राम के प्राचीनता के साक्षी है ग्राम के सीमात क झाड जहाँ झुड क झुड कौवे और बकुले बसेरा लते हैं गवई की शोभा बढाते है ध्यौ फटते और गोधूली के समय गयो के खिरक की शोभा जिनके खुरों स उडी धूल एसी गलियो म छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो य भी ग्राम म अभिसार का एक अच्छा समय होता है।

स्थान क अतिरिक्त काल की विशिष्टता पर ध्यान दिया गया। सामाजिक उपन्यासो म वतमान का ऐतिहासिक उपन्यासो म अतीत का और तिलस्मी उपन्यासों म भविष्य का प्रतिबिंब मिलता है। युग विशेष क *रीति रिवाज रहन सहन और आचार विचार की पूण और यथाथ रूपरेखा* उपन्यास म ही मिलती है। ऐतिहासिक उपन्यासो का महानता भिन्न भिन्न कालो की सामाजिक राजनीतिक और सास्कृतिक परिस्थितियो के सम्यक अध्ययन म है।

पृष्ठभूमि को कवि चित्रकार और नाटककार की दृष्टियो से देखा जाता है। तदनुरूप उसका वणन साकेतिक यथातथ्य और तटस्थ होता है। प्रौढ प्रतिभासपन्न उपन्यासकार एक साथ ही कवि का हृदय चित्रकार की आँख और नाटककार का मस्तिष्क रखते हैं। प्राकृतिक पृष्ठभूमि के लिए प्रकृति का सश्लिष्ट या सक्षिप्त वणन किया जाता है। पुरान उपन्यासो के अध्याय अक्सर प्रकृति के कोमल या भयकर दृश्य स आरम्भ होते हैं।

सामाजिक पृष्ठभूमि के लिए घर कमरे, सड़क आदि का विवरण दिया जाता है और उसकी सूक्ष्मता एवं विस्तार पर यथार्थवादी उपन्यास में विशेष ध्यान रखा जाता है। भौतिक वातावरण के अतिरिक्त मानसिक वातावरण भी होता है। दोनों में सामंजस्य का विरोध दिखाकर अमोघ प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। रोमानी उपन्यास में मनुष्य और प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध दिखाया गया है और विविध भावों का संचार करने के लिए प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया गया है। सामाजिक उपन्यास में व्यक्ति और वातावरण में सक्रिय सजीव सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। एक ही काल में लिखित 'चन्द्रकान्ता' में बनारस से दूर के पहाड़, नदियाँ, घाटियाँ और जंगल हैं तथा 'निःसहाय हिन्दू' में बनारस की गन्दी सड़कें, अंधेरी गलियाँ, तंग कमरे और मनहूस दूकानें हैं। पहला उपन्यास वन और पर्वत का उपन्यास है, दूसरा गलियों और कोठरियों का।

वर्णन कवि के लिए मित्र है, उपन्यासकार के लिए शत्रु। संस्कृत के गद्य प्रबन्धकार वन, उपवन, संध्या, प्रातः आदि का वर्णन करने लगते थे तो कथाकार से कवि बन जाते थे। वे पृष्ठभूमि का वर्णन शक्ति प्रदर्शित करने का साधन मानते थे। उनके सूक्ष्म विवरण से भौतिक वातावरण सजीव हो उठता था किन्तु उनका वर्णन कथा का अंग न होकर आभूषण बन जाता था। उपन्यासकार वर्णन के लिए वर्णन नहीं करते। उनमें से कुछ तो सुन्दर मनोहर दृश्यों का संक्षेप में उल्लेख कर देते हैं, कुछ साधारण, अनाकर्षक और उपेक्षित वस्तुओं का विवरण देना आवश्यक समझते हैं। ब्रजनन्दन सहाय के 'अद्भुत प्रायश्चित्त' (१९०५) में दोनों के उदाहरण मिलते हैं। घर की दशा देखिये:

पर बहुत गन्दा था। वहाँ एक चटाई बिछी हुई थी और एक टूटी चारपाई थी। कोने में एक दो मिट्टी के बरतन पड़े हुए थे। चारों ओर मकड़े जाला लगाए हुए थे।"

वर्णन का नितान्त अभाव उतना ही खटकता है जितना उसका अनावश्यक आधिक्य। उपन्यासकार का वर्णन-कौशल इसमें है कि वह छोटी छोटी बातों की चर्चा को भी रोचक बना दे और गल्प को सत्य के समान प्रस्तुत करे जैसा मायवती 'आत्मवृत्तान्त' और 'विमाता' में किया गया है।

उपन्यास मानवीय कथा है। उसमें वर्णन की उपयोगिता उसी अंश

तक है जिस अंश तक वह नाटकीय और प्रतीकात्मक है अर्थात उसम मान वीय थाय और भाव की व्याख्या होती है। जहां पष्ठभूमि का वणन मुख्य होता है वहाँ घटना और चरित्र गौण हो जाते हैं। प्रकृति से मनुष्य की महिमा बढ़कर है। हरी भरी प्रकृति आनन्द मग्न प्रमी प्रमिकाओं के प्रम व्यापार म अवश्य योग देती है पर वे स्वय मरुभूमि को भी सरस बना सकते हैं।[38] जिस उपन्यासकार को मानवजीवन का ही कविता प्रिय है वह प्रकृति की माया से मोहित नहीं होता। प्रमचन्द ने प्राकृतिक सौंदय को मानवीय हृदय का अंग बनाकर वणन को कथा म मिला दिया गया है। प्रमा की ये पंक्तियाँ उदाहरणाथ उद्धृत हैं

अमृतराय मन म बहुत सी बातें सोचते सोचते पूर्णा के साथ काठ पर गये। लुत्री हुई छत थी। कुर्सियाँ धरी हुई थी। नौ बजे रात का समय चन्द्र के दिन चाँदनी खूब छिटकी हुई मद मद शीतल वायु चल रही थी। बगीचे के हरे भरे वक्ष धीरे धीरे झूम झूम कर अति शोभायमान हो रह थे। जान पड़ता था कि आकाश ने ओस की पतली हलकी चादर सब चीजो पर डाल दी है। दूर दूर के धु धले धु धले पेड़ ऐसे मनोहर मालूम होते हैं मानो देवताओं के रमण करन क स्थान हैं।[39]

पष्ठभूमि के प्रति दो दृष्टिकोण हैं वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ। दोनो के लिए यह उचित है कि वणन म विस्तार नहीं हो कथात्मक अंश से उसका सम्बन्ध रहे जहाँ ऐसा न हो वहाँ वह किसी पात्र के दृष्टिकोण क अनुकूल हो। वणन-कला अनावश्यक विस्तार म न होकर यजना में है। देवकीनन्दन खत्री गोपालराम गहमरी प्रमचन्द और अवधनारायण के वणन की साथकता पाठको को वण्य विषय म तन्मय कर देने म है। बालकृष्ण भट्ट किशोरीलाल गोस्वामी ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी वणन क आवेग से कथा की गति म बाधा डालते हैं।

उद्देश्य

कथा साहित्य की पुरानी परम्परा और नवविकसित उपन्यास मे सबसे स्पष्ट किन्तु सबसे सूक्ष्म अन्तर उद्देश्य का अन्तर है। संस्कृत गद्य कवियों का लक्ष्य रस और अलकार की झडी लगाकर पांडित्य का प्रदशन करना था। हिंदी म संस्कृत और फारसी स आने वाली लोकप्रिय कथाएं मनबहलाव का मसाला देकर साहित्यिक खुराक जुटाती थीं। 'रानी केतकी

की कहानी, नासिकेतोपाख्यान और 'प्रेमसागर' भाषा का आदर्श उपस्थित करने के लिए लिखे गए। राजा शिवप्रसाद, पं० वंशीधर, पं० बद्रीलाल आदि ने पाठ्यक्रम के लिए उपयोगी कथाग्रंथों की रचना की। सम्भव है, उपन्यास के पूर्व साहित्यिक और लोकप्रिय कथाओं का उद्देश्य 'कान्ता सम्मित उपदेश' देना था। मनोरंजन और उपदेश के तत्त्व कम या अधिक, समस्त कल्पनात्मक साहित्य में रहते हैं और वे उपन्यास में भी बने रहे। प्राचीन कथाओं और उपन्यासों का अन्तर निरुद्देश्य और सोद्देश्य लेखकों की रचनाओं का अन्तर नहीं है। अन्तर जीवन के प्रति दृष्टिकोण और उसको व्यक्त करने की प्रणाली में है। उपन्यासकारों के दृष्टिकोण में जो सजगता, वैयक्तिकता, विशिष्टता और व्यापकता है वह पुराने ढंग के कथाकारों में नहीं थी। प्रेमचन्द का यह कथन अपूर्ण है :

प्राचीन कथाओं में लेखक बिल्कुल नेपथ्य में छिपा रहता था। हम उसके विषय में उतना ही जानते थे जितना वह अपने को अपने पात्रों के मुख से व्यक्त करता था। जीवन पर उसके क्या विचार हैं, भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उसके मनोभावों में क्या परिवर्तन होते हैं इसका हमें कुछ पता न चलता था, लेकिन आजकल उपन्यासों में हमें लेखक के दृष्टिकोण का भी स्थल-स्थल पर परिचय मिलता रहता है।[40]

पात्रों के चुनाव और चित्रण में उपन्यासकारों की जीवनदृष्टि ध्वनित होती थी साथ ही वे उपन्यास के बीच में पाठकों से बातचीत करने का समय या अन्त में विदा लेने के समय उन्हें कला या नीति के सम्बन्ध में कुछ कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाते थे। पुराने कथाकार टीका टिप्पणी करने का प्रयास नहीं करते थे।

प्राचीन कथाओं के उपकरण के चुनाव और उपयोग में किसी नवीन और गम्भीर जीवन-दर्शन को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने का प्रयास नहीं मिलता। आधुनिक उपन्यास का स्वरूप निर्धारित करनेवाला लेखक का जीवन के प्रति विशेष दृष्टिकोण है। हम कह सकते हैं कि उपन्यास उपन्यासकार के जीवन-दर्शन का ही विस्तार है। वह अपनी वस्तु का विन्यास और पात्रों का चित्रण अपनी जीवनदृष्टि का स्पष्ट या सांकेतिक परिचय देने के लिए करता है। पुरानी कथा-कहानी की तरह उपन्यास मन को मुग्ध करनेवाला अद्भुत घटनाओं का चक्र नहीं है बल्कि लेखक के मत का वाहन और पाठक के भाव विचार को उत्तेजित करने का साधन है। जो उपन्यास

कौतूहल तृप्त करने के साथ साथ आदर्श की ओर आकृष्ट नहीं करता जिसमे जीवन की जटिल समस्या का हल नहीं प्रस्तुत किया जाता और जिसक अध्ययन स शक्ति और प्रसन्नता का अनुभव नहीं होता उसकी लोकप्रियता अर्थहीन साहित्यिक मूल्य नगण्य और सामाजिक उपयोगिता संदिग्ध है।

संस्कृत-फारसी कथासाहित्य म सरल सुख दुख हास विलास विस्मय वचित्र्य का वर्णन है। सामाजिक जीवन के गूढ प्रसंगो से उसका सम्बन्ध नहीं है। उसकी रचना मनोविनोद के लिए हुई थी। उपन्यास लोकप्रिय किन्तु गम्भीर कला रूप है। जिस उपन्यासकार के पास कहने के लिए कुछ मूल्यवान नहीं है वह पाठकवर्ग के हृदय पर स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकता भले ही वह कुछ पाठकों को अधिक काल तक और अधिकांश पाठकों को कुछ काल तक प्रभावित कर ले। जब तक उसका अपना एक निश्चित मत नहीं होगा तब तक वह समाज की समस्या और उसका समाधान उपस्थित नहीं कर सकेगा। हमारे सभी श्रेष्ठ उपन्यासकार श्रेष्ठ विचारक हैं। उनकी रचनाओं का शक्ति का स्रोत उनकी विचारधारा है। उनकी विचारधारा म बल है और उस बल म उन्हें विश्वास है। परन्तु उपन्यासों में कला की ऊँचाई हो या न हो जीवनदर्शन की गहराई तो है ही। उनके जन्मदाताओं ने उन्हें विचार के प्रचार का साधन बनाकर उन्हें मरण के भय से मुक्त कर दिया है।

शैली

शैली की दृष्टि स भी उपन्यास की अपनी विशेषता है। प्राचीन कथाएँ पद्य और पद्याभास गद्य म लिखी गई थीं। उपन्यास विशुद्ध गद्य म लिखा गया। इसन के शब्दो म पद्य देवताओं की भाषा' (लग्वेज आफ द गौडस) है। गद्य दैनिक जीवन की भाषा है। पद्य स गद्य यथार्थ के अधिक निकट है और उपन्यास यथार्थ के बिना रह नहीं सकता इसलिए गद्य उसके लिए उपयुक्त होता है। यथार्थता विषय म ही नहीं विषय का प्रतिपादन करने की रीति में भी है। जीवन का यथार्थ वस्तुनिष्ठ और पूर्ण चित्रण गद्य के माध्यम स ही सम्भव है और कहानी भी उसी के माध्यम से कहने योग्य होती है। उपन्यास के लिए ऐसा गद्य चाहिए जिसम सरलता स्वाभाविकता लचक और स्वच्छंदता हो। प्रारम्भिक हिन्दी-उपन्यास म ऐसे गद्य का व्यवहार किया गया। संस्कृत और फारसी की रोमानी कथाओं का उदात्त गद्य उसके लिए विशेष उपयोगी नहीं हो सकता था। प्रथम आधुनिक उपन्यासकार को यथार्थ

चित्रण के लिए बोलचाल की भाषा का व्यवहार करना आवश्यक प्रतीत हुआ।[41] बाण और सुबन्धु के लिए शैली साधन न होकर साध्य थी। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध तक लिखित हिन्दी कथाओं का गद्य पद्य की रूढ़ियों में आबद्ध था। काव्याभास गद्य उदात्त, अलौकिक और शाश्वत तत्त्वों को वहन कर सकता था किन्तु दैनिक जीवन की साधारण वस्तुओं को प्रस्तुत करने में असमर्थ था। अतः उपन्यासकारों ने सरल, निराडम्बर गद्य शैली का प्रयोग किया, जो कथासाहित्य में नूतन परिवर्तन का द्योतक था।

उपन्यास के अभाव का एक कारण औपन्यासिक गद्य का अभाव था। इन्शा, सितारेहिन्द, पं० बद्रीलाल, पं० गौरीदत्त आदि कथा-लेखकों ने ठेठ भाषा का व्यवहार किया था, जो कथासाहित्य के लिए उपयोगी थी। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल तक हिन्दी गद्य की निजी विशिष्टता अच्छी तरह निखर नहीं पाई थी। एक नई समस्या उस समय खड़ी हुई जब राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द फारसी की ओर फिसल पड़े और राजा लक्ष्मण सिंह संस्कृत के मोह में पड़ गये। दोनों राजाओं का दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी था। इस विषम स्थिति में भारतेन्दु प्रगतिशील दृष्टिकोण लेकर आगे आये और मार्ग प्रदर्शन किया। वे हिन्दी में सरल और प्रचलित फारसी उर्दू शब्दों के चलन के विरोधी नहीं थे पर कठिन तत्सम संस्कृत शब्दों के ठूँसने के हिमायती भी नहीं थे। उन्होंने अतिवाद से बचकर हिन्दी के व्यक्तित्व की रक्षा की। उन्होंने भाषा का स्वरूप स्थिर कर शैली को आधुनिक वेश प्रदान किया। उनके द्वारा सन् १८७३ में 'हिन्दी नई चाल में ढली'। हिन्दी के नई चाल में ढलने का अर्थ है बोलचाल की भाषा का साहित्यिक रूप में ढलना।[42] भारतेन्दु ने संस्कृत और फारसी में नहीं बल्कि बोलचाल और साहित्य की भाषाओं में समझौता किया। भारतेन्दु-युग में आकर गद्य वर्णन, विश्लेषण और वार्तालाप का सफल माध्यम बन सका। उपन्यास जिस गद्य की प्रतीक्षा में था उसे उपस्थित करने में प्रारम्भिक गद्य निर्माताओं के नाम स्मरणीय रहेंगे।[43] उपन्यासकारों की गद्य शैली में स्पष्टता, सजीवता और स्वाभाविकता के साथ कथा, वर्णन और वार्तालाप प्रस्तुत करने की जैसी शक्ति है वैसी पुराने कथाकारों की शैली में नहीं है। पुरानी शैली में नई अनुभूति और विचार को व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं थी। उपन्यासकारों की भाषा का महत्त्व इसमें है कि वह नई वस्तु, नई संवेदना और नई भावना की अभिव्यक्ति कर सकी। उनकी शैली एक प्रकार से उनकी जीवन दृष्टि

बन गई।

उपन्यास का तात्त्विक विवेचन करने पर दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं उपन्यास क सभी अगों म नवीनता और नमनीयता है तथा उनके गठन म उपन्यासकार जिस विलक्षण कला का उपयोग करता है वह वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने की कला है। इस कला का चमत्कार विशेषकर कथा विन्यास और चरित्र चित्रण मे दिखाई पडता है। उपन्यासकार कथा और चरित्र का इस स्वाभाविक ढग स प्रस्तुत करता है कि व कल्पित होकर भी यथाथ प्रतीत हात हैं। पाठक कथा को आपबीती या जगबीती घटना के समान और चरित्र को अपने या अपन परिचित के समान सत्य समझ बठते हैं। कला में सत्य से सत्य की प्रतीति कम विश्वसनीय नही होती। यथाथ वादी एक प्रकार स भ्रमवादी होता है। नाटक म दशक द्वारा भ्रम की सष्टि की जाती है, उपन्यास म लेखक द्वारा। दशक भ्रम की अवस्था मे अधिक दर तक नही रहता क्योकि वह अभिनता को उस यक्ति स भिन्न समझता है जिसका वह अनुकरण करता है। उपन्यास में कम से कम उस समय तक भ्रम बना रहता है जब तक वह पढा जाता है। जहाँ रगमचीय साधन फीक पड जाते हैं वहाँ सजीव पात्र अपना रग जमा लते हैं। यदि उपन्यास म भी घटनाए असम्भव और अनुभत हों पात्र अलौकिक और असामान्य हो तो अविश्वास को स्वेच्छा स हटाना' कठिन हाता है। साधारणीकरण म घटनाओ की असाधारणता स पात्रो की असाधारणता अधिक बाधक होता है। पात्रो की अवतारणा घटनाओ म सत्याभास प्रदान करन क लिए की जाती है। कथा को विश्वास योग्य और प्रभावोत्पादक बनान के लिए विभिन्न तत्त्वों का सहज सफल सम वय वाछनीय है। स्वाभाविकता उपन्यास का प्राण है। हेनरी जम्स के विचार स जीवन का भ्रम उत्पन्न करना 'उपन्यास कार की कला का अथ और इति है।[६१]

शब्द, अथ और परिभाषा

उपन्यास की विधा नई है पर उपन्यास शब्द पुराना है। सस्कृत साहित्य शास्त्र म जिस सन्दभ और अर्थ म उसका प्रयाग किया गया उस सन्दभ और अथ म हिन्दी मे नहीं किया गया है। साहित्य दपण म वह भाणिका का एक अग माना गया है जो दश्यकाव्य के अन्तगत है। सस्कृत म गद्यकाव्य के लिए उपन्यास का प्रयोग नहीं हुआ पर हिन्दी मे बहुत दिना

तक वह गद्यकाव्य म परिगणित होता रहा । पं० अम्बिकादत्त व्यास ने 'गद्य काव्य मीमांसा' और डा० श्यामसुन्दरदास न 'साहित्यालोचन' म उसे गद्य काव्य की कोटि म ही रखा है। उपन्यास गद्यकाव्य से भिन्न एक स्वतन्त्र रचना प्रकार है। 'अमरकोष' म दिया गया अर्थ उस पर लागू नहीं होता। वह अंग्रेजी 'नोवेल' का समानार्थी है। प्राचीन संस्कृत साहित्य म प्रयुक्त इस शब्द स उसकी नाममात्र की समानता है। हिन्दी म यह शब्द सीधे संस्कृत से न आकर बंगला स आया।[65]

'उपन्यास' नाम का प्रयोग भारतेन्दु काल स ही होने लगा था यद्यपि उसके लिए अन्य शब्द भी व्यवहृत होते रहे। द्विवेदी-काल म उपन्यास के लिए 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग होने लगा और कहानी के लिए 'आख्यायिका' का। पहले उपन्यास को आख्यायिका भी कहा जाता था ('चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश')। उपलब्ध रचनाओं मे 'मालती' (१८७५) के लिए सर्वप्रथम उपन्यास का प्रयोग हुआ है। श्यामास्वप्न को 'गद्यप्रधान कल्पना प्रणयिनी परिणय' को एक अपूर्व अभिनव प्रकार की अलौकिक कल्पना और सौ अजान एक सुजान को 'प्रबन्ध कल्पना' कहा गया है। 'अमरकोष' म कथा आख्यायिका म भेद दिखाते हुए कथा को प्रबन्ध कल्पना कहा गया है — 'प्रबन्ध कल्पना कथा'। उक्त रचनाओं म कल्पना का व्यवहार सूचित करता है कि उपन्यास कल्पित कथा माना जाता था। अंग्रेजी 'फिक्शन' का भी यही अभिप्राय होता है। अम्बिकादत्त व्यास न अपने उपन्यास का नाम 'आश्चर्य वृत्तान्त' रखा है। वृत्तान्त स सच्ची घटना का बोध होता है। इस दृष्टि से उपन्यास सत्य-कथा का आभास देता था। 'वार्ता' शब्द का व्यवहार भी कभी-कभी किया जाता था, जो बड़ी कथा का सूचक था। 'परीक्षागुरु' को उपन्यास के साथ ही 'एक सांसारिक वार्ता' कहा गया है। आरम्भ म कुछ उपन्यासकार और आलोचक 'नावेल' का ही प्रयोग करते थे। रूपनारायण दुबे न अपनी 'श्यामकुमारी' को 'नावेल' की संज्ञा दी है। राधाचरण गोस्वामी न अपने उपन्यासों ('कल्पलता' 'सौदामिनी' आदि) के लिए 'नवन्यास' शब्द का उपयोग किया था जो अंग्रेजी 'नोवल' के अधिक निकट था। इन सभी शब्दों म 'उपन्यास' शब्द ही आत्यधिक प्रचलित रहा और अब तो वह रूढ़ हो गया है। उसे बहुधा पुस्तक के मुखपृष्ठ या भूमिका में निर्दिष्ट कर दिया जाता था।

मराठी और गुजराती म 'नवलकथा' 'नोवेल' के आधार पर गढ़ा

हुआ शब्द है। मराठी में उपन्यास को कादम्बरी की भी संज्ञा दी गई है। अब भारतीय साहित्य में प्रायः उपन्यास शब्द का ही व्यवहार किया जाता है। नावेल से नूतन साहित्य रूप का बोध होता है जो उपन्यास से नही होता। उपन्यास का व्युत्पत्यर्थ है समीप रखना। वह ऐसा साहित्यिक माध्यम है जिससे लेखक पाठक के समीप अपने अनुभव की कथा मानव चरित्र का चित्र और अपनी जीवनदृष्टि प्रस्तुत करना चाहता है। उसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नही है। जाज ऑरवेल ने उसे सर्वाधिक अराजकतावादी साहित्य रूप ('द मोस्ट एनार्किकल ऑफ ऑल फोर्मस ऑफ लिटरेचर') कहा है। वास्तव में वह साहित्य का ऐसा रूप है जिसका कोई रूप नहीं है। वह परिभाषा के बन्धन में बन्धन के लिए तैयार नही होता। जिसके सीमाहीन प्रसार में चन्द्रकान्ता सतति सेवासदन सुनीता और शेखर–एक जीवनी को स्थान मिल सकता है उसकी एक परिभाषा सुनिश्चित करना कठिन है। हेनरी जेम्स के अनुसार वह अत्यन्त स्वतन्त्र अत्यन्त नमनीय अत्यन्त विराट साहित्य रूप है।[46]

उपन्यासकारो के सिद्धान्त

फिर भी उसके जन्मकाल से ही उसकी परिभाषा और व्याख्या दी गई है। उसके सम्बन्ध मे उपन्यासकारो ने जो विचार व्यक्त किये अथवा सिद्धान्त निर्धारित किये हैं यहाँ उनका विवेचन करना आवश्यक है। आलोचको के मत का उल्लेख प्रस्तावना में किया जा चुका है।

प० बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यास को 'मन बहलाने वाली गुटिका'[47] कहा था। उनकी परिभाषा एकांगी होते हुए भी प्रारम्भिक उपन्यासों के लिए सत्य है। उनका आकार छोटा होता था। उनमे अनेक ऐसे हैं जो आज लघु उपन्यास की कोटि मे भी नही रखे जायेंगे। उनके आकार के सम्बन्ध मे तत्कालीन लेखकों की जो धारणा थी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। आज की धारणा के अनुसार उन्हें उपन्यास नही मानना उचित नही होगा। वह प्रयोग का काल था उस काल की रचनाओ को जरा सहानुभूति से देखना ही पडेगा। भट्ट जी ने उपन्यास मात्र को गुटिका की संज्ञा दी थी परन्तु प० अम्बिकादत्त व्यास ने उपन्यासिका नाम से उसका एक स्वतन्त्र प्रकार निर्धारित किया था। उनके अनुसार 'जो तीन घण्टे के भीतर पढ़ा जा सके वह उपन्यासिका'[48] है। उन्होने अपनी छोटी सी कथारचना स्वर्गसभा को

उपन्यासिका के अन्तर्गत रखा था। लघु उपन्यास की यह परिभाषा अभी भी उपयोगी है।

उपन्यास के आकार की अपेक्षा उसके उपादान को अधिक महत्व दिया जाता था। भट्टजी ने लिखा था कि उपन्यास का मुख्य रस शृङ्गार रस है जिसके बिना यह ऐसा भासित होता है जैसा सर्वांग सुन्दर रमणी को किसी ने नाक काट लिया हो'[49]। उपन्यास के उदयकाल से ही उसमें प्रेमतत्व की प्रधानता रही है। यहाँ तक कि वह प्रेमकथा का पर्याय माना जाता रहा है। किशोरीलाल गोस्वामी की दृष्टि में प्रेमभाव उपन्यास का प्रमुख आकर्षण है

इसमें प्रेम की प्रबलता, प्रणय की उन्मत्तता, चाह की मत्तता, यौवन का पूर्ण विकास, लालसा का प्रबल प्रवाह कामना का वेग रस की तरंग प्रीति की लहरें सभी कुछ रहना है इसीलिए कवियों में साहित्यश्रेणी में उपन्यास को श्रेष्ठ गद्दी भी है।[50]

रामप्रसाद शर्मा ने अपनी चन्द्रमुखी में इसी आशय का विचार प्रकट किया है। कुछ उपन्यासकार उपन्यास को कल्पित प्रेमकथा न मानकर समाज का सच्चा इतिहास मानते हैं और उनके अनुसार उसकी श्रेष्ठता प्रेमानुभूति की व्यंजना में नहीं बल्कि सामाजिक व्यवहार के वर्णन में निहित है।

उपन्यास समाज का चित्र है और आज उपन्यास की जो कथा कल्पित मानी जाती है वही समय पड़ने पर इतिहास बन जाती है।[51]

ब्रजनन्दनसहाय ने उसे इतिहास से भी ऊँचा स्थान दिया है

इतिहास उतने दिन नहीं रहता जितने दिन कविता उपन्यास तथा नाटक रहते हैं और जितने लोग इन विषयों को पढ़ते हैं उतने लोग इतिहास को कदापि नहीं पढ़ते। इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य में उपन्यास आदि के सहारे लोग समाज देश तथा जाति की रीति नीति एवं आचार विचार से अवगत होते हैं।[52]

ऊपर दी गई कोई एक परिभाषा पूर्ण नहीं कही जा सकती। उपन्यास का क्षेत्र विशाल है। उसमें काव्य की कल्पना भी है और इतिहास का सत्य भी। उसमें सामाजिक यथार्थ के साथ ही सुधारवादी आदर्श भी होना चाहिए ताकि वह मनुष्य के भविष्य का निर्माण कर सके। माधव बसोट ने उपन्यासकार के गहन दायित्व की ओर संकेत करते हुए लिखा था

उपन्यास लिखना कोई लड़कों का खेल नहीं है। उपन्यास से समाज देश व भाषा को बड़ी हानि लाभ पहुँचाता है। उपन्यास भी एक तरह पर समाज देश व भाषा का इतिहास बनाने वाला होता है।[53]

पुराने उपन्यासकार इस महत्वपूर्ण बात को महसूस करते थे कि उपन्यास का कार्य वर्तमान की व्याख्या करने के साथ-साथ समाज को अनागत के लिए तैयार करना है। महता लज्जाराम शर्मा के विचार से उपन्यास के विविध प्रयोजन हैं उससे प्रजा के सच्चे चरित्र का बोध हो और होनहार प्रजा के चरित्र' का रूप भी अंकित हो।[54] उपन्यास एक साथ ही अतीत की प्रतिध्वनि वर्तमान का प्रतिबिम्ब और भविष्य का संकेत है।

उसमें जीवन जीवनदर्शन और कला के तत्व सन्निहित हैं। इनके समन्वय से उसका रूप निर्मित होता है। वह केवल जीवन का अंग नहीं कलाकृति भी है। पुराने उपन्यासकारों की भी मान्यता थी कि उससे जीवन के सम्बन्ध में उत्कंठा ही पूरी नहीं होती साहित्यिक आनन्द की भी उपलब्धि होती है। उसे गोपालराम गहमरी ने साहित्य का मधुर अंग और अमृतलाल चक्रवर्ती ने 'कोमल मधुर साहित्य' माना है।[55] यह सही है कि उसे इस रूप में ग्रहण करने की चेष्टा कम हुई है। उसकी अपरिमित संख्या देखकर तो ऐसा लगता है कि उसकी रचना के लिए असाधारण प्रतिभा नहीं बल्कि कागज और स्याही का उपयोग करने की शारीरिक शक्ति चाहिए। फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उपन्यास एक गम्भीर कला है।

उपन्यासकार का काम केवल कहानी गढ़ना चरित्र निर्माण करना और संदेश सुनाना नहीं है। उस सामग्री के साथ साथ सामग्री की सज्जा पर भी ध्यान देना पड़ता है। निम्नलिखित परिभाषा कला पक्ष की दृष्टि से बड़ी समीचीन है।

किसी घटना को ऐसे अंगों में विभक्त करके जिनको अलग अलग वर्णन करने में आश्चर्य आनन्द और साहित्य के छओं रसों का यथास्थान रस प्राप्त हो सके और उन भिन्न भिन्न अंगों के वर्णन के अन्त में समस्त घटना सुस्पष्ट बन जावे और सारा वृत्तान्त एक साथ मालूम हो जावे ऐसे गद्य के लेख को उपन्यास कहते हैं।[56]

टिप्पणियाँ

१– संस्कृत में दण्डी का 'दशकुमारचरित', ग्रीक में लौंगस का 'डफनिस ऐंड क्लो' तथा लैटिन में पेट्रोनियस का 'सट्रिकोन' पुराने उपन्यास के नमूने माने जा सकते हैं। 'दशकुमारचरित' एक राजकुमार और नौ मन्त्रि-कुमारों के भ्रमण-वृत्तान्त के रूप में प्रेम, साहसिकता और धूर्तता की अनूठी कथा है। 'डफनिस ऐंड क्लो' ग्राम्य जीवन के निर्दोष प्रेम की मधुर कहानी है। 'सट्रिकोन' में उच्च वर्ग के पाखण्ड और रोमन समाज के भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है।

2– Encyclopaedia Britannica Vol 16 577

इस उपन्यास का अनुवाद पं० रविनाथ पाण्डेय द्वारा 'गैंजी की कहानी' नाम से किया गया है और साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित हुआ है।

३– आदि अंग्रेजी उपन्यासकार फील्डिंग ने अपने उपन्यास 'जोसफ ऐंड्रयूज' को 'कौमिक एपिक इन प्रोज' की संज्ञा दी थी। राल्फ फौक्स के शब्दों में यह आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्यात्मक कला रूप (Epic are form of our modern bourgious society) है। द नोवेल ऐण्ड द पीपुल पृ० ८०। हिन्दी उपन्यासों में सर्वप्रथम सम्भवतः पं० रामदास गौड़ ने उपन्यास को 'गद्य का महाकाव्य' कहा था। देखिए रामदास गौड़ : प्रेमचन्द जी का गद्यकाव्य, विशालभारत, जनवरी १९२८, पृ० ५६)

4– 'The novel was bound to develop therefore under capitalism whose increase in the productive forces brought by the division of labour not only increased the differentiation of society but also by continually revolutionising its own basis produced an endless flux and change in life

—Illusion and Reality, p 173

5– It is from Northern Italy that the novel of modern Europe (both the literary type and the name) derives

—Encyclopaedia Britannica Vol 16 p 577

६– देखिए 'प्रणयिनी परिणय' का उपोद्घात

७– वही

८– काव्यादर्श ॥२८॥

९– आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यञ्च पञ्चधा ॥१२॥

१०–ओज समास भूयस्त्वमेतद गद्यस्य जीवनम

११–नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषो क्लिष्ट स्फुटो रस ।
विकटाक्षरब धश्च कृत्स्नमेकत्र दुलभम
—हर्षचरित ॥९॥

१२–प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध विन्यास वदग्ध्यनिधिनिबधम
—वासवदत्ता श्लोक ९

१३–स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति राग हृदि कौतुकाधिकम
रसेन शय्या स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव
—वही ॥८॥

१४– नाटक और उपन्यास प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन काय विवरण—
दूसरा भाग पृ० ८८

१५– उपन्यास रहस्य सरस्वती, अक्तूबर १९२२ पृ० १९७

१६– उपन्यास हिन्दी प्रदीप जनवरी १८८२ पृ० १८

१७– उपन्यास और छोटी कहानियो के ढाँचे हमने पश्चिम से लिए हैं।
—प० रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास प० ५३९
उपन्यास लेखन की आधुनिक कला पाश्चात्य देशो स आई है
—डा० श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन पृ० १५७

हिन्दी म नये उपन्यासो का चलन बहुत कुछ अग्रजी और बगला के उपन्यासों की प्रेरणा से हुआ।
—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र वाङ्मय विमश पृ० ५०

यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ सस्कृत की कथा आख्यायिका की सीधी सतान हैं।
—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य का मम पृ० ६३

१८– मिश्रबन्धु विनोद (चतुथ भाग) पृ० १५८

१९– साहित्यालोचन पृ० १५४

२०– आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १३८
हिन्दी उपन्यास पृ० ६१

21– Any fictitious prose work over 50 000 words
—Aspects of the Novel p 9

२२– गद्यकाव्य मीमांसा', नागरी प्रचारिणी पत्रिका प्रथम भाग, १८९७

23– 'A novel is a living thing all one and continuous like oth r organism and in proportion as it lives will it be found I think, that in each of the parts there is something of each of the other parts

—The House of fiction p 34

24 – Art is that which gives meaning to experience

२५–डा० श्यामसुन्दरदास हिन्दी के निर्माता पृ० ८८

२६–यशोदा देवी 'स्वर्गीय पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी

'सरस्वती', जुलाई १९३२, पृ० ८२

२७– साहित्य का उद्देश्य' पृ० ६१

२८–वही, पृ० ४४

29– Plot is the knowing of destination

—Elizabeth Bowen Collected impressions, p 249

३०– 'नाटक और उपन्यास', प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन कार्यविवरण

—दूसरा भाग पृ० ९४

३१–बालकृष्ण भट्ट "सौ अजान एक सुजान, पृ० ३०

32– the only classification of the novel that I can understand is into that which has life that which has it not

—वही पृ० ३५

३३–मैथिल 'चन्द्रकान्ता संतति' 'लतिका मधुप' (१९१८)

३४–डा० श्रीकृष्णलाल ने उपन्यास की कथा शैलियों का एतिहासिक दृष्टि से विकास दिखाते हुए लिखा है 'उपन्यास में समापण कला का उपयोग बहुत देर में हुआ, प्रारम्भ में बहुत दिनों तक केवल वर्णनात्मक शैली का ही बोलबाला था। —'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास पृ० २८९।

35– "The art of fiction does not begin until the novelist thinks of his story as a matter to be shown to be so exhibited that it will tell itself

—Craft of fiction p 62

36– Aspects of the Novel p 65

३७–पृ० ३५

38– "The setting is not very important. Happy lovers have in thems lves the power of beautifying a des-rt A luxuriant

nature no doubt serves them better

—Robert Liddel Some principles of fiction

३९–पृ० २२४–२५

४०– साहित्य का उद्दय पृ० ५०

४१– इस पस्तक म दिल्ली क एक कल्पित (फर्जी) र ्स का चित्र उतारा गया है और उसको जसा का तसा (अर्थात स्वाभाविक) दिखाने क लिए सस्कृत अथवा फारसी अरबी के कठिन-कठिन श दो की बनाई हुई भाषा के बदले दिल्ला क रहन वाला की साधारण बोलचाल पर ज्याद दृष्टि रखी गई है। — परीक्षागुरु का निवदन

४२– हरिश्च द्र ने उस बिगडी हुई हि दी भाषा को नव अलकारा स अलकृत करक सुसम्पन्न नागरी बनाकर नागरी का नाम साथक किया। हि दी भाषा उनक समय म ऐसी सहज मधर एव लावण्यमयी हुई कि लोग देखत ह। उस पर विमोहित हाने लग

—शिवन दन सहाय 'हरिश्च द्र पृ० १०९

४३– इस देश रूपी खेत म जो हमारी भाषा का बीज छिप रहा था उस लल्लूलाल रूपी वर्षाऋतु ने अकुरित किया तो शिवप्रसाद शारद ने उस बल्बूटे का आकार दिया और हरिश्च द्र वसत ने उसमे फल फूल दिखलाए।'

44– the begining & the end of the art of the novelist

वही पृ० ३३

४५– हि दी म यह श द बगला स आया है और अनुकरणप्रिय रचनाचतर बगाली ग्र थकारो ने आधनिक लक्षणा से अग्रजी के नोविल श द का पर्याय बना लिया है।

— माधवमिश्र निबधमाला पृ० १०

डा० सत्ये द्र ने समीक्षा क सिद्धा त (१९५२) म पृ० १५७ म लिखा है कि उन्ह किशारीलाल गोस्वामी ने बताया था कि 'उपन्यास का आरम्भ बगला के बकिम ने किया। वे एक दिन हुक्का पीते-पीते मनु स्मति पढ रहे थे कि उन्ह उप यास श द का पता चला और वही नाम उन्होंने ग्रहण किया।'

उप यास श द का ग्रहण और प्रचार बकिम ने भले ही किया हो

उसका प्रथम प्रयोग कदाचित भूदेव मुखोपाध्याय ने किया क्योंकि उन्होंने बंकिम से पहले 'ऐतिहासिक उपन्यास (१८५७) नामकी पुस्तक लिखी थी।

46- 'the most independent most elastic, most prodigious of literary forms

—'The Art of the Novel p 326

४७-"उपन्यास', हिन्दीप्रदीप' (जनवरी १८८२), पृ० १८

४८- गद्यकाव्य मीमांसा", ना० प्र० प० १८९७

४९-वही पृ० १९

५०-'सुख सर्वरी का' निवेदन

५१-महता लज्जाराम शर्मा 'आदर्श दम्पत्ति' की भूमिका

५२- राधाकान्त' की भूमिका

५३- *किरणशशी की आलोचना (मनोरंजन एप्रिल १९१३)*

५४-वही

५५- 'देहाती बाबा' की भूमिका

चन्दा' की भूमिका

५६-बनवारीलाल बिहारी वीरव्रतपालन' (१९०५) की 'अवतरणिका



३

ऐतिहासिक पीठिका

हिन्दी उपन्यास उन्नीसवीं सदी की सन्तान है। साहित्य के इस नये रूप का जन्म नये भारत के जन्म के साथ हुआ और नये भारत की भाँति ही यह अंग्रेजी सम्पर्क की देन है। अंग्रेजी सम्पर्क से उपन्यास की विधा ही नहीं मिली, इससे राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनसे उपन्यास का विकास सम्भव हुआ।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना

भारत में अंग्रेजों की नजर धन धरती और धर्म पर गड़ी रही परन्तु भारतीय इतिहास में उनका प्रवेश एक ऐसे संक्रान्ति काल में हुआ कि वे अनजान में भारतीय समाज और साहित्य में नूतन, महान और दूरगामी परिवर्तन के भागी बने। आंग्ल भारतीय सम्बन्ध की अद्भुत कहानी सोलहवीं सदी के अन्त से आरम्भ होती है। उस सदी के अन्तिम वर्ष में सैमुयल डेनियल ने विदेश में अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रचार की रोमानी कल्पना की[1] और उसी के अन्तिम दिन ईस्ट इंडिया कम्पनी को पूर्व में व्यापार करने की शाही सनद मिली। १६१२ में कम्पनी ने पहलेपहल सूरत में सुरती का कोठी खोली। एक अंग्रेज विद्वान ने एक बार कहा था कि आधुनिक सभ्यता में दो चीजें बड़ी आवश्यक हो गई हैं तम्बाकू और उपन्यास।[2] अंग्रेजों ने पहले तम्बाकू और बाद में उपन्यास देकर दो बड़ी आवश्यकताएं पूरी कर दीं। सतरहवीं शताब्दी के अन्त तक वे पश्चिम दक्षिण

से पूर्व-उत्तर की ओर बढ़ गये तीन बड़े नगरों (मद्रास, बम्बई, कलकत्ता) की नींव डालने में सफल हुए और सौदागर के साथ-साथ जमींदार बनकर भारत में राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखने लगे। उनका स्वप्न अंतिम महान मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद ही साकार हो सका।

१७०७ में औरंगजेब के निधन के बाद प्रायः पचास वर्षों में विशाल, उन्नत मुगल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया और अकबर के वंशज नाममात्र के सम्राट रह गए। देश छोटे-बड़े स्वाधीन और संघर्षरत राज्यों में बट गया। वीर मराठों की जयध्वजा मध्य में गुजरात से उड़ीसा तक और उत्तर में पंजाब तक फहराने लगी। हिन्दू राज्य के पुनरुत्थान की संभावना जाग उठी। भूषण की कल्पना सत्य होने को आई। उसी स्थिति में यदि विदेशी व्यापारी भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करते तो भारतवासियों में जो संघर्ष होता उसका सिक्का चलता और भारत का इतिहास दूसरा होता। अंग्रेजों ने केन्द्रीय शासन की दुर्बलता और आंतरिक कलह से लाभ उठाकर अपना प्रभुत्व स्थापित करना शुरू किया। अंततः मुगलों के उत्तराधिकारी मराठे नहीं, अंग्रेज बने। प्लासी के युद्ध (१७५७) में बंगाल के अंतिम बहादुर नवाब सिराजुद्दौला को उसी के अस्त्र से पराजित कर क्लाइव ने भारत में जिस राज्य की नींव कूटनीति पर डाली उस कूटनीति के द्वारा ही वारेन हेस्टिंग्स (१७७२ १७८५) ने मजबूत बनाया, वेल्स्ली (१७९८ १८०५) ने उस पर पांव खड़े किए और डलहौसी (१८४८ १८५६) ने उसे महल बना दिया। १७५७ से १८५७ तक का काल भारतीय राजसत्ता के विघटन और अंग्रेजी प्रभुता के विस्तार का काल है। प्लासी युद्ध के बाद कम्पनी की छत्र छाया उत्तर भारत की ओर बढ़ने लगी और अवध के विलयन (१८५६) से समूचे हिन्दी संसार पर छा गई।

आर्थिक परिवर्तन

कम्पनी सरकार के सौ वर्षों का इतिहास राजाओं नवाबों और बेगमों से अधिक व्यापारियों कारीगरों और किसानों के रक्त तथा आँसू में लिखा गया है। व्यापारी शासक के राज्य में शासन का अर्थ था व्यापार और व्यापार का अर्थ था लूट। भारत से मुफ्त या कम दाम में माल लिया जाता था और यूरोप में ज्यादा लाभ से बेचा जाता था। लगान वसूल करने में ज्यादती की जाती थी। कार्नवालिस के 'इस्तमरारी बंदोबस्त' (१७९०)

से अंग्रेजी ढंग की जमींदारी प्रथा की नींव पड़ी और किसानों को मजदूर बनानेवाला एक नया वर्ग बना। पूर्व के शासक आर्थिक शोषण करते थे तो सार्वजनिक हित के कार्यों में व्यय करते थे। कम्पनी ने जो लूटा उससे भारत उजाड़ हो गया[3] किंतु इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रांति हो गई[4]। औद्योगिक क्रांति के बाद मशीन से बने सस्ते विदेशी माल भारत में धड़ाधड़ आने लगे और उद्योगपतियों का शोषण चक्र चलने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध तक भारत कच्चा माल देकर तैयार माल लेनेवाला खेतिहर उपनिवेश बन गया। उधर इंगलैण्ड में पूंजीपतियों के घर में धन का ढेर लग गया।[5] पूंजीवाद ने साम्राज्यवाद को जन्म दिया। बाजार बनाए रखने के लिए उपनिवेश बनाए रखने की आवश्यकता थी। १८५७ के विप्लव के पूर्व ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से शासन सूत्र लेने की तैयारी शुरू हो गई थी जो १८५८ में पूरी हो गई। अब लूट पर कानून की मुहर लग गई। नतीजा यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सात बार अकाल पड़े उत्तरार्ध में चौबीस बार।[6]

मार्क्स ने १८५३ में लिखा था कि समस्त गृहयुद्ध विदेशी आक्रमण विद्रोह विजय दुर्भिक्ष भारतीय समाज की ऊपरी सतह को छूकर रह गए पर इंगलैण्ड ने उसका पूरा ढांचा ध्वस्त कर दिया।[7] कृषि की अवनति, उद्योग व्यवसाय के विनाश, नगरों के ह्रास और व्यक्तिगत भू-स्वामित्व के सूत्रपात से प्राचीन ग्राम-व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई। भारत की आर्थिक प्रणाली की रीढ़ ही टूट गई। अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक प्रभुत्व से और उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पादन के उन्नत साधन से आर्थिक विध्वंस हुआ। भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता का कारण परम्परागत श्रमविभाजन था। अंग्रेजों के आने से उत्पादन और वितरण के साधनों में परिवर्तन हुआ और भारत में महान सामाजिक क्रांति हुई। मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का स्थान नवीन पूंजीवादी व्यवस्था लेने लगी। इस परिवर्तन के लिए भारत को जो मूल्य चुकाना पड़ा वह इतिहास में अपना सानी नहीं रखता। इंगलैण्ड में पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की प्रतिष्ठा इंगलैण्ड के ही पूंजीपतियों द्वारा हुई, भारत में विदेशी व्यापारी और पूंजीपतियों द्वारा।

भारत में भी मुगल साम्राज्य के क्षय पतन के साथ पूंजीवादी वर्ग का आविर्भाव हो रहा था। सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय सौदागरों की तुलना लंदन या आमस्टरडम के सौदागरों के साथ की जाती थी सूरत का वीरजी

सारा संसार का सबसे धनी सौदागर माना जाता था।[5] अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक भारत एक महान औद्योगिक देश था। अपने उत्पादन और उत्पादन की प्रणाली में वह किसी भी उन्नतिशील देश की समानता कर सकता था। गाँव के साथ साथ नगरों का और नगरों में बुर्जुआ वर्ग का विकास हो रहा था। परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई थी। विकासोन्मुख पूँजीवाद ह्रासोन्मुख सामन्तवाद को अपदस्थ कर नई समाज व्यवस्था की स्थापना अवश्य करता। मुगल साम्राज्य के अस्तकाल में राजाओं और नवाबों की विलासिता, प्रतिद्वंद्विता, अयोग्यता राज्यलिप्सा स्वच्छाचारिता मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था के पतन की सूचना थी। इतिहास स्वयं उसके लिए चिता सजा रहा था। भारत में अंग्रेजों का आगमन नहीं होता तो भी उसके आर्थिक और सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होता। उन्होंने आकर स्वाभाविक विकास में व्यवधान उपस्थित कर दिया। देश को सुदीर्घ संक्रान्ति काल की कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। भारतीय पूँजीवाद और सामंतवाद दोनों को पददलित कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत के भाग्य पर चढ़ बैठा।

सामंतवाद का क्षय

आर्थिक परिवर्तन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवर्तनों का आधार होता है। अंग्रेजी राज्य ने भारत पर एक नई आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था लाद दी। मध्यकालीन सामन्तवाद का क्षय और आधुनिक पूँजीवाद का उदय हुआ। इस प्रक्रिया में उपन्यास के उद्भव एवं विकास का अटूट सम्बन्ध है। १७०७ से १८५७ तक की अर्ध शताब्दी सामंतवाद का ह्रासकाल है। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों के साथ ही सामंतों का बौद्धिक नैतिक, शासकीय आदि दृष्टियों से अधःपतन हुआ मानों खोखले वृक्ष के गिरने से डालियाँ टूटकर बिखर गई। बक्सर की लड़ाई (१७६४) में बंगाल-अवध के नवाबों और मुगल सम्राट की हार सामंतवाद की पहली करारी हार थी। १८५६ में अवध के साथ ही मुस्लिम सामंती संस्कृति पर आघात पहुँचा। सिपाही विद्रोह में उन सभी शक्तियों की पराजय हुई जो सामंती व्यवस्था की पोषक थीं और सामंती व्यवस्था जिनकी पोषक थी। सत्तावन का स्वाधीनता संग्राम एक प्रकार से सामंतवाद का अंतिम असफल स्वाधीनता संग्राम था। उसके बाद उनका सजाया गया

ही सात सौ देशी रजवाड़ा म रह गया।

सामतवाद के ह्रासकाल मे राजनीति धम, समाज और सस्कृति के क्षेत्रो मे अधकार छाया हुआ था केवल साहित्य की दिशा मे प्रकाश दृष्टि गोचर हो रहा था यद्यपि उसम भी अस्तकालीन आभा ही शेष रह गई थी सुदर कि त जीवन हीन। मुगल दरबार की विलासिता छलक छलक कर राजाओ और नवाबो क दरबारो मे बिखर रही थी। छोटे छोटे दरबार छोटे छोट स्वग बन रहे थ। कवि और किस्सागो अपन आश्रयदाताओ की रुचि के अनुकूल अपनी कला दानो हाथो स लुटा रहे थे। सामती सस्कृति क साथ सामती साहित्य और कला विकास की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। अब उनका पतन अवश्यभावी था। सत्तावन की क्राति क बाद साहित्य म अभूतपव क्राति हुई। सामतवाद का पोपक प्रभाव नष्ट हो गया और अग्रजी प्रभाव का विस्तार हुआ। दरबार और दरबार की शोभा बढाने वाल कवि और किस्सागो फीके पड गए। शिक्षा शासन और समाज क नवगठन स मध्यवग का उदय हुआ। मध्यवर्गीय समाज साहित्य कला और सस्कृति का सगम बना। मध्यवग क द्वारा मध्यवग क लिए उपन्यास की सृष्टि होन लगी। वह मध्यवर्गीय कला रूप बन गया।

मध्यवग का उदय

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य म मध्यवग का उदय एक नई घटना था। डाडवेल का मत है कि इस वग का अस्तित्व कम स कम डढ हजार वर्षों से नही था।[9] मुगलकाल म उच्च और निम्न वर्गों के बीच पुरोहित व्यापारी कवि और कलाकार थे पर आधुनिक मध्यवग स उनकी सामाजिक स्थिति भिन्न थी। कम्पनी काल क छोटे छोटे जमीदारो कवियो और नौकरी-पेशे वालो को मध्यवग की कोटि म रखा जा सकता है यद्यपि इनकी सख्या अधिक नही थी। सत्तावन के विप्लव तक मध्यवग जिसमे कवि और कलाकार भी थे एक प्रकार से राजाओ और रईसो पर अवलम्बित था। नवोदित मध्यवग प्रत्यक्षत शासक का आश्रित नही था। वह समस्त देश का प्रतिनिधि था।

उसका गठन ऐसा था कि उसके विभिन्न स्तरो मे स्पष्ट विभाजक रेखा नही खीची जा सकती है। एक छोर पर व थे जिन्हे पूजीपति कहा जा सकता था और दूसरे छोर पर वे थे जो सवहारा के निकट थ। मोटे तौर पर मध्यवग को दो समूहो म रखा जा सकता है (१) स्वत त्र पेशावर जैसे—वकील

साहित्यकार, पत्रकार, सेठ तथा सौदागर, (२) सरकारी और गैरसरकारी वेतनभोगी नौकर, जैसे—किरानी, अधिकारी शिक्षक, पटवारी और मुनीम।[10]

उपन्यास लेखक शिक्षित मध्यवर्ग के थे। इस वर्ग के लोग अल्पसंख्यक होते हुए भी अत्यन्त शक्तिवान और प्रभावशाली थे। उनकी कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। वे सुसंस्कृत, जागृत, उदार और गतिशील थे। उनमें जाति, भाषा और प्रान्त का भेदभाव नहीं था। वे समान स्वार्थ से अनुप्राणित थे। उनकी रुचि प्रवृत्ति जातिगत न होकर वर्गगत थी। वे एक वर्ग थे जाति नहीं।[11] सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक नेतृत्व उनके हाथ में था। वे विद्रोह और क्रान्ति के बदले समझौता और सुधार के हिमायती थे। पूर्व-पश्चिम और प्राचीन नवीन में वे समन्वय करना चाहते थे। वे गोमांस खाने से मर जाना बेहतर समझते थे पर अपने सिर पर गोमूत्र डालने को उतावले नहीं थे।[12] मध्यवर्गीय नैतिकता की जैसी गहरी छाप उपन्यास पर पड़ी वैसी साहित्य के अन्य अंगों पर दिखाई नहीं दी।

नागरीकरण

अधिकांश मध्यवर्गीय लेखक और पाठक नगरों में रहते थे। अंग्रेजों के आगमन-काल तक देश में धन जन से सम्पन्न बड़े-बड़े नगर थे, जहां उद्योग व्यवसाय और शासन के काम होते थे। कम्पनी की आर्थिक नीति के कारण कई पुराने नगर उजड़ गये और नये बने। सत्रहवीं शताब्दी में बम्बई और कलकत्ता की नींव डाली गई थी। १७७५ में बनारस अवध के नवाब के हाथ से कम्पनी के हाथ में आया। अठारहवीं सदी तक हिन्दी उपन्यास के तीन मुख्य प्रारम्भिक प्रकाशन स्थान अंग्रेजी प्रभाव के अन्तर्गत आ गये थे। १८५६ तक हिन्दी-क्षेत्र के सभी नगर कम्पनी के अधीन हो गये। विदेशी व्यापार, नये उद्योग, शिक्षा और शासन के केन्द्रों के रूप में नगरों का क्रमिक विकास हुआ। पुराने नगरों का कायापलट हो गया। जहां सामन्ती सभ्यता और संस्कृति पलती थी वहां महाजनी सभ्यता और संस्कृति निवास करने लगी। १८७१ में भारतेन्दु ने नवाबों के नगर लखनऊ की दशा का वर्णन करते हुए लिखा था जहां पहिले जौहरी बाजार और नाना बाजार था वहां गन्दे घरने हैं और सब इमामबाड़ों में किसी में डाक्टर कहीं अस्पताल कहीं छापाखाना हो रहा है। बेमुरम्मत होकर मारे मूतन हैं।

जहाँ मोती लुटते थे वहाँ धूल उडती है।[13]

इन धूल धूसरित नगरो म ही सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक क्रियाशीलता आरम्भ हुई। स तो की कुटिया और राजाओ के दरबार छोड कर साहित्य नगरो की सभाओ समितियो और समाजा म शरण लेने लगा। उन्नीसवी शताब्दी पूर्वार्ध म बुन्देलखण्ड बघेलखण्ड अवध बनारस राजस्थान क राजदरबारो म वीर और शृङ्गार रस की कविताए गू जती थी। उसक उत्तरार्ध म बनारस, प्रयाग मेरठ अलीगढ कानपुर आगरा, पटना राँची आदि शहरो म साहित्यिक सभा समितियो का जाल बिछ गया। इनसे भाषा क प्रचार के साथ साहित्य की सजना म सहायता मिली। कवि-समाजो म पुराने ढग की कविताओ का पाठ होता था समस्यापूर्ति होती थी एव स्फुट शृ गारिक कविताओ को प्रश्रय मिलता था। यह दरबारी वातावरण गद्य साहित्य क विकास के अनुकूल नही था तथापि इसी दरबारी वातावरण म उपन्यास पनपन लगा।[14] जहाँ साहित्यकारो का सम्मेलन साहित्यिक चर्चा और विचार विनिमय होता था वहाँ साहित्य की प्रवत्तियो का निर्माण और त्रुटियो का अनुभव भी हो रहा था। दरबारी साहित्य का अ तिम आश्रय स्थान बनारस ही नये साहित्य का धाराओ का उदगम स्थान बना। लक्ष्मण गोविन्द आठले न काशी को हि दी उपन्यास का उत्पत्ति स्थान माना है और कहा है कि भारतेन्दु की सभा ने सभ्य समाज म हि दी प्रम बढाकर उपन्यास पढने और लिखने की रुचि पदा की और जहाँ उपन्यासो का नाम न था वहाँ बीस ही वप के भीतर उपन्यासों का एक दूसरा हिमालय खडा हो गया।[15]

उपन्यासो म गोष्ठी जीवन के अनेक पक्ष प्रतिबिम्बित हैं। कथा नायक चाटकारों से घिरे हुए है (एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती परीक्षागुरु सौ अजान एक सुजान)। सभ्य समाज म कविता इतनी प्रिय है कि कवि ही सच्चा साहित्यकार माना जाता है। युग की रुचि के अनुकूल उपन्यास म काव्य का रूपरग है जो अध्याया के आरम्भ म पद्यात्मक उद्धरण और दृश्य-योजना नखशिख वणन सरस वार्तालाप और अलकृत भाषा शली म देखा जा सकता है। भाग्यवती और श्यामास्वप्न मे तो कवियित्री और कवि का ही नायिका और नायक बनाया गया है। सहृदय उपन्यास लेखकों के समान उनके पात्र भी मित्र के बिना नही रह सकते हैं। किसी नायक को मित्र सामाजिक आन्दोलन म सहयोग देता है (नि सहाय हिन्दू), किसी के

लिए स्वयं सूली पर चढ़ जाना चाहता है (प्रणयिनी परिणय), किसी को प्रेमिका के बाग में ('चन्द्रकान्ता') तो किसी को वेश्यालय तक ('धूर्त रसिक लाल') पहुंचा देता है। इस प्रकार मित्रता उपन्यास की कथा-रूढ़ि बन गई है।

मध्यवर्गीय लेखकों ने राजभवन के प्राचीर में साहित्य को निकाल कर उसका गठबन्धन समाज के साथ कर दिया। बहुत दिनों तक साहित्य और समाज का सम्बन्ध साहित्य और नागरिक समाज का सम्बन्ध रहा तथापि इस प्रकार दोनों कभी सम्बद्ध नहीं हुए थे। उपन्यास ही एक ऐसा साहित्य रूप है जिसमें नागरिक सभ्यता की विविधता और जटिलता की यथार्थ और पूर्ण अभिव्यक्ति हुई। नगरों में सर्वप्रथम सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के चिह्न प्रकट हुए। वेतनभोगी वर्ग शक्ति और स्वतन्त्रता का अनुभव करने लगा। धार्मिक दृष्टिकोण के बदले भौतिक दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। पुरातन मूल्यों का विघटन हुआ और उनका स्थान नये मूल्य लेने लगे। नागरीकरण की इन विशेषताओं का उपन्यास पर गहरा प्रभाव पड़ा। अधिकांश उपन्यासकारों ने नगर को घटनास्थल और वहां के वैयक्तिक पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को वर्ण्य विषय बनाया तथा कहीं कहीं उसे इतना महत्वपूर्ण स्थान दिया कि वह एक पात्र बनकर मानवीय पात्र से अधिक सजीव हो उठा। उन्होंने निर्भीक होकर नगरवासियों की नैतिकता पर प्रकाश डाला। रईसों की अकर्मण्य विलासिता और वेश्याओं के छिछले प्रेम को लेकर उन्होंने अनेक पृष्ठ रंग तथा वंचना और साहसिकता की यथार्थवादी कथाएं सुनाई। प्रारम्भिक उपन्यास नगर जीवन के दस्तावेज हैं और प्रारम्भिक उपन्यासकार सच्चे अर्थ में नागरिक उपन्यासकार हैं।

व्यावसायिक लेखन

मध्यवर्ग के अभ्युत्थान से साहित्य का नागरीकरण ही नहीं व्याव सायीकरण भी हुआ। सामन्ती समाज में साहित्य राजाओं का विनोद और विद्वानों का व्यसन था। साधारण पाठकों की संख्या सीमित होने से कवि राजा महाराजाओं की कृपा पर निर्भर थे। आधुनिक युग में साहित्य शिक्षित समाज की सम्पत्ति बना तथा पाठक और प्रकाशक उसके संरक्षक हुए। यद्यपि राजदरबार से बाजार में आकर साहित्य पुरस्कार की वस्तु नहीं रह कर खरीद बिक्री की सामग्री हो गया तथापि उसका अवमूल्यन नहीं हुआ।

नामक वग क आश्रय म रहने के कारण कवि उसको वीरगाथा और विलास लीला का गान करते थे। नवोदित मध्यवर्गीय लेखक साधारण ग्राहको की गुणग्राहकता पर अवलम्बित थे और उसकी अवहेलना नही कर सकते थे। फलत साहित्य एक स्वतन्त्र एव सामान्य वत्ति बना तथा उसम मानव जीवन की साधारण घटनाओ सवेदनाओ और आकाक्षाओ को स्थान मिला। सामयिक निबन्ध, गद्यनाटक और यथार्थवादी उपन्यास पनोवर लेखका क विशिष्ट अनुदान हैं।

जहा उपन्यास जनता की वस्तु बना वहाँ उसम साहित्यिक गुणा का ह्रास भी हुआ। राजाश्रित कवियो को अपनी कला के प्रदशन का अवसर मिलता था और लोकरुचि के अनसार लिखन को बाध्य नही होना पडता था। राजाश्रय स मुक्त लेखक लोकरुचि को प्रभावित करने क बजाय उसस प्रभावित होने लगे। उन्होने अच्छे बुरे मौलिक अधमौलिक उपन्यास लिखना और लिखवाना शुरू किया और उनका ढर लगा दिया। उनकी दष्टि कला की आवश्यकताओ की ओर न जाकर बाजार की माँग की ओर चली गई। इस त्रुटि की पूर्ति दूसरे प्रकार स हुई। जब तक अथ क लिए लिखना लेखक की प्रतिष्ठा क विरुद्ध होता है तब तक वाणी का मन्दिर आर्थिक और सामाजिक समस्याओ के लिए ब * रहता है। साहित्य क व्यावसायीकरण स उसका सामाजीकरण हुआ। व्यावसायिक उपन्यास लेखक समाज क लिए और समाज क सम्बन्ध म लिखन की भावना से प्ररित हुए। उनकी वस्त और शली म निजी विशिष्टता है। उनकी शली उनकी रानी न होकर उनकी दासी है। महान व्यावसायिक लेखक गापालराम गहमरी क उपन्यास इस तथ्य की पुष्टि करते है।

सामती तत्वो का विरोध

आधुनिक भारत का निर्माता मध्यवग आधुनिक साहित्य का निर्माता है। रीतिकाल का साहित्य सामतवग का साहित्य है। आधुनिक काल का साहित्य मध्यवग का साहित्य है और उपन्यास उसका अत्यन्त सजीव अग है। जस सामतवग और रामानी कथासाहित्य का सम्बन्ध अभिन्न था, वसे ही मध्यवग के साथ यथार्थवादी कथासाहित्य—उपन्यास—का इतिहास जुडा हुआ है। सगीत की भाँति कथा-कहानी भी शासक वग के लिए विलास का वस्तु थी। रामानी कथासाहित्य क्षणिक मनोरजन के लिए जीवन की कठोर

वास्तविकता से दूर आदर्श प्रेम और साहसिकता के अद्भुत, असाधारण लोक में ले जाता था। रोमांस और आदर्श साथ-साथ चलते हैं। रोमानी लेखक अनिवार्यतः आदर्शवादी और आदर्शवादी सामान्यतः रोमानी होता है। मध्य वर्ग आदर्शवादी होते हुए भी व्यावहारिक एवं वस्तुवादी था। उसका साहित्य अतः आदर्शवाद न होकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद हो सकता था। रोमानी कथासाहित्य उस मध्यवर्ग की रुचि और भावना के अनुकूल नहीं था जिसमें हिन्दी उपन्यासकार उत्पन्न हुए थे। अतः उपन्यास की उत्पत्ति रोमानी कथा साहित्य के प्रतिक्रियास्वरूप हुई। इस प्रतिक्रिया का परिचय उपन्यास लेखकों ने उपन्यास में मध्यवर्गीय यथार्थवाद की प्रतिष्ठा और रोमांस विरोधी रूप में दिया है।

आरम्भ से लेकर आज तक उपन्यास में मध्यवर्ग की वाणी मुखरित होती रही है। मध्यवर्गीय समाज, सभ्यता और संस्कृति से उसका विशेष सम्बन्ध रहा है। रोमांस में प्रेम और युद्ध की कथा प्रधान रही है, उपन्यास में प्रेम और सम्मान की। मध्यवर्ग के जीवन की ये दो मौलिक समस्याएं श्रीनिवासदास से लेकर प्रेमचन्द तक उपन्यासकारों को प्रिय रही हैं। जब समाज एवं देश का नेतृत्व राजा रानी के हाथ में था कथासाहित्य में वे नायक-नायिका थे। जब नेतृत्व मध्यवर्ग करने लगा, इसलिए उपन्यास में मध्यवर्गीय पुरुष नारी नायक-नायिका की भूमिका में उतरे। अपनी परिस्थिति से जूझने वाले निःसहाय हिन्दू के मध्यवर्गीय नायक-नायिका बारम्बार नामरूप बदलकर उपन्यासों में जन्म लेते रहे हैं। देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास में भी कुमार वीरेन्द्र सिंह अपनी निष्क्रियता के कारण पतनशील सामंत वर्ग का और तेजसिंह अपनी सक्रियता के कारण उदीयमान मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। मध्यवर्ग के सुधारवादी आदर्श और उपदेशात्मक प्रवृत्ति सम्बन्धी भावुकता और अनिवार्य बौद्धिकता ने उपन्यास में अभिव्यंजना पाई है। वस्तु पात्र और दृष्टिकोण की सीमाओं के बावजूद उपन्यास प्रतिनिधि साहित्य रूप रहा है।

उपन्यास लेखकों के सामने संस्कृत और फारसी और उन पर आधारित उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी-कथाएं थीं, जिन्हें 'रोमांस' की संज्ञा दी जा सकती है। दण्डी सुबन्धु और बाण के प्रेम रोमांस, जो विषय और शैली दोनों में असाधारण थे, उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सके क्योंकि उनकी अभिरुचि नवीन विचार, सामयिक विषय और सरल शैली में थी। पं० बालकृष्ण

भट्ट ने लिखा था कि दण्डी के दशकुमार चरित से किसी प्रकार की शिक्षा नहीं निकलती और सुबन्धु की 'वासवदत्ता' से कुछ आनन्द नहीं मिल सकता।[16] प० अम्बिकादत्त व्यास ने 'कादम्बरी' के सम्बन्ध में अपना मत इन शब्दों में व्यक्त किया था कथा से कहीं लम्बा चौड़ा उसका आटोप है। कथा का आनन्द लेने को पन्ना हो तो एक पृष्ठ बाँचते-बाँचते जी घबड़ा जाता है।[17] देवकीनन्दन खत्री पर फारसी रोमांस का प्रभाव भी पड़ा और उसकी प्रतिक्रिया भी हुई। उन्होंने दास्तान अमीर हमजा के नायक अमीर और उसके ऐयार अमूर की प्रतिद्वंद्विता में कुमार वीरेन्द्र सिंह और तेजसिंह को खड़ा किया। फर्जी ने अपने जादूगरों को हिन्दू काफिर बनाकर धार्मिक असहिष्णुता दिखाई थी। खत्रीजी ने इसका कलात्मक प्रतिवाद किया। उन्होंने मुसलमानों को खलनायक का ऐयार बनाया पर हिन्दू मुस्लिम पात्रों के चित्रण में दुहरी कूची से काम नहीं लिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में प्रचलित कहानियों में रानी केतकी की कहानी जिस पर फारसी के साथ ही भारतीय छाप है दरबारी कवि और कथाकार द्वारा लिखी गई थी। उसमें दरबारी कहानी की प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ हैं। शासक वर्ग के विचार एवं विश्वास निराले होते हैं। प्रेम और युद्ध की कल्पित घटनाएं जादू-टोने की अद्भुत बातें उसका मन मोह लेती है। अतः रोमानी कथाओं में देशकाल की परिस्थितियों का वास्तविक और स्वाभाविक वर्णन नहीं रहता। शासक वर्ग अपने वैभव विलास और सुख सुविधा को अक्षुण्ण रखने के लिए धर्म नीति दमन और अंधविश्वास के हथकंडों से काम लेता है। यही कारण है कि रोमानी कथा साहित्य में अलौकिक एवं उपदेशात्मक तत्त्व भी रहते हैं। उसका मुख्य उद्देश्य कौतूहल बढ़ाकर आनन्द प्रदान करना है अतः उसका घटना प्रधान और सुखांत होना आवश्यक है। उसमें उपदेश की अपेक्षा मनोरंजन की मात्रा अधिक होती है। वह अद्भुत रस का साहित्य था जिससे मध्यवर्ग के बुद्धिजीवी लेखक प्रभावित नहीं हो सके। वे उसके आदर्शों को अपनाकर या उसकी परम्परा को आगे बढ़ाकर अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते थे। रानी केतकी लापाअंजन लगाकर गायब हो गई थी। देवकीनन्दन खत्री ने उसे हंसकर उड़ा दिया 'जिस आदमी के पास कोई ऐसी चीज हो जिससे वह गायब हो जाय तो फिर ऐयारी सीखने की जरूरत क्या रही? गायब होकर जो चाहा कर डाला।[18] पुरानी कथाओं के स्वरूप या वस्तु से आधुनिक उपन्यासकारों

की आवश्यकता पूरी नही हो सकती थी । प्रेमचद ने उन पर व्यग्य की बौछार की थी

हमारे यहाँ उपन्यास काल से पहले ऐसे किस्से कहानियो का बहुत प्रचार था जिनमे प्रेम और विरह के वर्णन प्रधान होते थे । प्रेमी एक निगाह मे माशूक का 'कुश्तए नाज' हो जाता था माशूका अपनी सहेलियो से अपनी विपत्ति कहानी सुनाती थी आशिक साहब आह भरते थे सिर धुनते थे घर पर खबर होती थी, यार समझाने के लिए जमा होते थे ।[१९]

रोमानी कथा के समान रीतिकाव्य भी अवकाशभोगी अभिजात वर्ग का साहित्य था । उसमे भी जीवन के गंभीर प्रश्नो और प्रसगो का अभाव था तथा कल्पना चमत्कार और आडबर की प्रधानता थी । उसके आदर्श भी मध्यवर्ग के नए लेखको को मान्य नही हो सके । उनमे से कुछ उसके प्रशसक होते हुए भी समर्थक नही थे । राजाओ रईसो का जीवन उस कमरे के समान था जिसे पर्दे की ओट से ही देखा जा सकता था । उसी तरह रीतिकाल मे नर-नारी का यौन-सम्बन्ध नायक नायिका भेद के बहाने दिखाया जाता था और नायक-नायिका का वर्णन राधाकृष्ण के नाम पर किया जाता था । अलौकिक आवरण को हटाकर नर-नारी के सहज सामान्य रूप को देखने और दिखाने की प्रवृत्ति आधुनिक उपन्यास मे प्रकट हुई । रीतिकालीन नायक नायिका मे नर-नारी के सौन्दर्य की चरम कल्पना साकार हुई और उनका चित्रण वैभव के मादक वातावरण मे किया गया । दरबारी कवियो ने साधारण स्त्री-पुरुष को अपने काव्य मे स्थान देना उचित नहीं समझा । जिनमे कटाक्ष निक्षेप की क्षमता न हो ऐसी गोबर पाथती हुई, खेत निराती हुई गहकर्म मे उलझी हुई स्त्रियाँ उनके काव्य का विषय नही हो सकती थीं ।[२०] साधारण परिचित वातावरण मे साधारण नर-नारी के क्रियाकलाप का वर्णन उपन्यास की निजी विशेषता है । रीतिमुक्तको मे गृह जीवन के भीतर भी नर-नारी के सम्बन्ध की झाँकी मिलती है पर उसमे जितनी मादकता है उतनी भावुकता नही । मिलन विरह के वर्णन कृत्रिम और परम्परागत है । 'अष्टयाम' के रूप मे वर्णित नायक-नायिका के निशिदिन के क्रीडा विलास सच्चे गृहस्थो के सुखद दाम्पत्य जीवन के प्रतिबिंब न होकर विलासिता मग्न शासक वर्ग के जीवन के परिचायक है । उपन्यास का प्रवर्तन परिवार की दैनिकी के रूप मे हुआ । पहला लिखित उपन्यास 'भाग्यवती' कुटम्ब का उपन्यास है ।

रीतिकाल म वर्णित नायिका दूती अलकार मादकता और शृगारिकता राजमहल की सुन्दरी कटनी आभूषण, विलासिता और वासना का साहित्यिक प्रतिरूप थी। आश्रयदाताओ की अभिलाषा की तरह कवियों की कल्पना कामिनी क देहलता म लिपटी सिमटी थी। नारी म केवल शरीर रह गया था, शरीर मे केवल सुन्दरता और सुन्दरता म केवल सजावट रह गई थी। शृगारी कवियो न मानवी को नकली कागज की फुलवारी बनाकर उसके फूल से अगो के साथ खिलवाड किया। प किशोरीलाल गोस्वामी ने लालावती म उनका उपहास किया

यदि उन उपमाप्रिय कवियो के गढे हुए उपमाना स एसी नायिका मूर्ति बनाई जाय कि जिसके मुख की जगह आईना आँखो का जगह दो तलवारें आँखो के बदले दो मछली नाक के स्थान म सरो क पड हमी की जगह मिश्री को डली गल के स्थान म शख छाती की जगह हाथी के मस्तक चोटी के बदले मोटी सी साँपिन हाथ के बदले कमल लिखकर कमर की जगह एकदम खाली छोड दी जाय और फिर उसके नीच जाँघ की जगह दो केले के खम्म खड करके एडी की जगह अनार की डार रख दी जाय तो वह नायिका कसी भयावनी राक्षसी मूर्ति सी बनकर त्यार होगी? इसलिए बाबा! हम अनगल बकन वाले कवि नही है।[21]

नारी का शरीर मात्र मानना नर नारी के रागात्मक सम्बन्ध को अस्वीकार करना था। नर नारी की जीवनकथा के रूप म उपन्यास की रचना तभी सम्भव हो सकती थी जब उनमें रागात्मक सम्बन्ध हो। रीतिकाव्य प्रमहीन काव्य था। देव और बिहारी को छोडकर प्राय सभी कवियों का सौन्दर्यबोध सूक्ष्म न होकर स्थूल शृगारिकता पर आधारित था। रीतिकालीन प्रम वासना की कुञ्जगली म खो गया था। उस वीर गाथाकालीन साहसिक प्रम (मानस की शब्दावली म सिवलरस लव) या भक्तिकालीन उदात्त प्रम की कोटि म नही रखा जा सकता।

रोमानी कथा और रीतिकाव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया सामन्तवाद और पूँजीवाद के सधिकाल की स्वाभाविक देन थी। साम तो अभिरुचियो और आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्य के प्रति असन्तोष सामन्त वग के प्रति असन्तोष का आवश्यक अग था। भारत में युग-युग स यह धारणा चली आती थी कि राजा और महाराजा देश के भाग्य विधाता हैं। यह

धारणा गलत नहीं थी क्योंकि यहाँ अनेकानेक विद्वान, वीर, दानी, न्यायी और प्रजापालक राजाओं का आविर्भाव हुआ था। अठारहवीं उन्नीसवीं शताब्दियों के भारतीय इतिहास ने यह निर्णय कर दिया कि उच्च वर्ग से देशहित की आशा करना भूल है। एक चिरकालीन राष्ट्रीय विश्वास को धक्का लगा। नवाबों और नरेशों के युद्ध नई व्यवस्था कायम करने के बदले पुराना व्यवस्था को बनाए रखने के लिए थे। उनमें से बहुतों ने सन सत्तावन के विद्रोह में देशवासियों के विरुद्ध विदेशियों का साथ दिया। यदि वे अवरोधक नहीं होते तो विद्रोह की बाढ़ में कम्पनी बहादुर के साथ ब्रिटिश ताज भी बह जाता। भारतीय शासक वर्ग के पतनकाल में भी जनता में राजभक्ति की भावना जीवित थी। १८५६-५७ में कम्पनी के हाथ में अवध के जाने पर जनता में असन्तोष की ज्वाला भड़क उठी थी और विद्रोह होने पर सबने मिलकर बहादुरशाह को सम्राट घोषित किया था। राजभक्ति की आरती की यह अन्तिम लौ थी। प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्रैडला स्वागत' में देशी राजसमाज के प्रति जनता की भावना को वाणी प्रदान की थी

दुष्ट मुसल्ल अपने भाइन कह साथ न दी हो।
भाजन बिन विद्रोहिन दल कह निबल की हो॥
ठौर-ठौर निज घर लुटवाए अरु फुकवाय।
प्रान खोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्रान बचाय॥

भारतेन्दु के समय राजाओं और रईसों की वीरता विनष्ट हो चुकी थी, विलासिता शेष रह गई थी। वे व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने सार्वजनिक स्वार्थ को भूल गये थे। उनमें उच्च आदर्श के लिए मर मिटने की हौंस नहीं रही। शिष्टता और सुरुचि का स्थान असभ्यता और रूढ़िवाद ने ले लिया था।[२] वे आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के नायकों की भाँति नपुंसक, असामाजिक और परवश हो गये थे। उनके लिए मोम की नाक, दूध की मक्खी, शतरंज के राजा आदि उपमाएँ उपयुक्त थीं।[२३] उनका दृष्टिकोण सामन्ती था। वे रेत में चोंच गाड़कर चैन की साँस लेने वाले शुतुरमुर्ग की तरह महलों में बन्द रहते थे। समय की गति देखने और पहचानने में वे असमर्थ थे। आत्मविश्वास और सामाजिक दायित्व से अनुप्राणित मध्यवर्ग वर्तमान का यथार्थ था, इसलिए भविष्य भी उसके साथ था। पं० बालकृष्ण भट्ट ने इन शब्दों में कहा था कि मध्यम श्रेणी ही महत्त्व या बड़प्पन की नर्सरी या उत्पत्ति स्थान है जो ऊँचे दर्जेवालों को लात मार सुशिक्षा का पूर्ण वैभव

प्राप्त कर सब कामों में पहिले अग्रसर होती रहेगी।[31]

जिस प्रकार सामन्ती समाज के साथ सामन्ती साहित्य का ह्रास हुआ उसी प्रकार नई शक्ति के रूप में मध्यवर्ग के उदय के समानान्तर नई कला के रूप में उपन्यास का उदय हुआ। राजसमाज के प्रति असन्तोष उसमें व्यंग्य विद्रोह आक्षेप के रूप में उभर कर आया। तिलिस्मी एयारी और ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने सुन्दर स्त्री के लिए युद्ध हत्या षडयन्त्र और प्रपंच करने वाले सामन्तों की कुत्सित मनोवृत्ति का परिचय देकर पतनशील सामन्ती सभ्यता का झाँकी प्रस्तुत की। जर्जर रुग्ण सामन्ती सभ्यता को ढाने वाले ज्योतिषी पुरोहित और पुजारी भी श्रद्धा एवं विश्वास का भाजन नहीं रहे। पूर्व में राजाओं की तरह उनका भी समाज में सम्मान था क्योंकि वे विद्या धर्म दर्शन राजनीति आदि में निपुण होते थे। धीरे धीरे वे भी रूढ़िवादी और अपरिवर्तनशील बन गये। उन्हें प्राचीन भारत के अध पतन का सहायक और नवीन भारत के उत्थान का अवरोधक मानकर उपन्यास लेखकों ने उन पर खुलकर या छिपकर आक्रमण किया।[5] इस प्रकार उपन्यास की रचना सामन्ती व्यवस्था के त्रिदेवों राजाओं राजाश्रित कलाकारों और पण्डितों की आलोचना के रूप में हुई।

मानवतावाद और जनवाद

सामन्त और सामन्ती संस्कृति के रक्षक समाज और देश की रक्षा करने में असमर्थ थे। अत उनमें राष्ट्रीय अविश्वास होना स्वाभाविक था। प्रसाद जी के मतानुसार भारतीय नरेशों की उपस्थिति भारत के साम्राज्य को बचा नहीं सकी। फलत उनकी वास्तविक सत्ता में अविश्वास होना सकारण था। धार्मिक प्रवचनों ने पतन में और विवेकदम्भपूर्ण आडम्बरों ने कोई रुकावट नहीं डाली। तब राजसत्ता कृत्रिम और धार्मिक महत्त्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे वही क्षुद्रता में महान दिखलाई पड़ने लगा।[33] साधारण मनुष्य की महिमा में आस्था उसकी शक्ति में विश्वास उसकी लघुता के प्रति सहानुभूति उस मानवतावादी दृष्टि की परिचायिका है जिसे भारतीय विद्वान पश्चिम की देन मानते हैं। मानवतावादी दृष्टि उपन्यास की प्रमुख प्रेरकशक्ति बनी। उपन्यास के लिए वह समय सबसे अधिक उपजाऊ होता है जब मनुष्य के प्रति मनुष्य का आकर्षण होता है। जब मनुष्य को मनुष्य के सम्बन्ध में

जानने और सोचने की इच्छा हुई और मनुष्य मनुष्य के अध्ययन का महान विषय बना तब साधारण नर-नारी उपन्यास में अवतरित हुए। इतिहास के पन्ने पर राजा रानी और सेना-सेनापति उठते हैं, महाकाव्य में देवता दानव राजा महाराजा और जीवनी में महापुरुष ही स्थान पाते हैं किन्तु उस जन समूह का प्रवेश निषिद्ध रहता है जिसे अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन ने डिवाइन एवरेज की संज्ञा दी है। उपन्यास मानव लोक के सुख-दुख आशा अभिलाषा स्वप्न-संकल्प जय-पराजय की गाथा है। उपेक्षित पीड़ित दलित और निम्न वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण तो उसकी कलात्मक विशिष्टता ही है।

लगभग एक हजार वर्षों का (८००–१८००) प्राचीन हिन्दी-साहित्य सामंत युग में पला। दरबारी काव्य और भक्तिकाव्य की समानान्तर धाराएं चलती रहीं और उनमें राजा रानी तथा देवी देवता विहार करते रहे। लौकिक प्रेमाख्यानक काव्य में भी राजा राजकुमार मन्त्रीपुत्र रानी राजकुमारी, मन्त्रीपुत्री को नायक नायिका का पद मिला। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ही एक ऐसी मानवीय कथा है जिसमें नाना प्रकार के पुरुषों और स्त्रियों का मेला देखने योग्य है। उन्नीसवीं सदी में गद्यकाल के आरम्भ के साथ मनुष्य के वास्तविक रूप का विशद चित्रण आरम्भ होता है। पाठ्य पुस्तकों के रूप में लिखित कथाओं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रेखा चित्रों निबन्धों और नाटकों में मनुष्य जैसा है उसी रूप में उसे उपस्थित करने का प्रयास किया गया। जीवनी और आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति भारतेन्दु-युग में ही उत्पन्न हुई। रेखाचित्रों में प्ररूप (टाइप) का दर्शन हुआ तो जीवनी और आत्मकथा में व्यक्ति के बाह्य और आन्तरिक पक्षों पर प्रकाश पड़ा। इनसे मानव जीवन में बढ़ती हुई रुचि का बोध होता है।

उपन्यास जनवादी भावना की सर्वोत्कृष्ट देन है। रोमानी कथासाहित्य अपने उपादान और दृष्टिकोण में आभिजात्य लिए था। सामंत युग के अन्त काल में यह भावना विकसित हुई कि साधारण लोगों के जीवन में भी रोचक और मार्मिक प्रसंग होते हैं और उन्हें साहित्य का प्रतिपाद्य बनाया जा सकता है। उपन्यास वह रचना प्रकार है जिसमें सर्वप्रथम साधारण लोगों का जीवन चित्रण के योग्य समझा गया और साधारण भाषा में पूर्णता के साथ चित्रित हुआ। यथार्थ में रोमांस, सामयिक में शाश्वत तथा परिचित में नवीन की उपलब्धि के लिए जिस व्यापक दृष्टि की आवश्यकता होती है वह उपन्यास

लेखकों में है। उन्होंने सामाजिक और पारिवारिक उपन्यासों में यह अच्छी तरह दिखा दिया कि प्रतिदिन की घटनाओं और क्रियाओं में भी हसाने रुलाने की क्षमता है तथा वास्तविक जीवन के रोमांस से बढ़कर कोई रोमांस नहीं होता। उन्होंने अपने आस पड़ोस घर आँगन की छोटी छोटी बातों की चर्चा इतने सीधे सादे ढंग से की है कि सत्य गल्प से अधिक अद्भुत लगता है। देवकीनन्दन खत्री और उनके अनुगामियों तक ने राजाओं की अपेक्षा उनके नौकरों (ऐयारों) को अधिक महत्त्व दिया और उन्हें अधिक आकर्षक बनाकर उपस्थित किया क्योंकि नौकरों के जीवन से विशेष मनोरंजक शिक्षा मिल सकती थी।[27]

उच्च वर्ग के बदले मध्यम और निम्न मध्य वर्गों में मनोरंजन और शिक्षा के तत्वों का अन्वेषण परिवर्तित लोकरुचि का द्योतक था। लोगों को उन नर नारियों की कथा में विशेष रुचि हो सकती थी जिनके साथ वे एकात्म बोध कर सकें। उन्हें सामंत युग के उदात्त नायक नायिका के सुख दुख भी उतने प्रभावित नहीं कर सकते थे जितने अपने युग के नर-नारी के सुख दुख। उचित वर्ण्य विषय के प्रति आस्था और आत्मीयता के बिना कला की सृष्टि नहीं होती। जब लेखकों पाठकों को अपने समाज और समय के व्यक्तियों के प्रति उत्कंठा और सहानुभूति हुई तब व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की कथा उपन्यास में लिखी गई। इस रूप में उपन्यास लेखन उस पूंजीवादी समाज में ही सम्भव हुआ जहाँ व्यक्ति की महत्ता स्वीकृत हुई।

व्यक्तिवाद

भारतीय सामाजिक संगठन आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था जाति प्रथा और संयुक्त कुटम्ब प्रथा पर आधारित था। उसमें व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का महत्व विशेष था। धर्म निरपेक्ष अंग्रेजी शासन प्रणाली नई पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था पाश्चात्य व्यक्तिवादी सभ्यता आधुनिक शिक्षापद्धति और सुधार-आन्दोलन के फलस्वरूप व्यक्ति का महत्त्व बढ़ने लगा। व्यक्तिगत स्वाधीनता और उपन्यास में घनिष्ठ सम्बन्ध है। परीक्षागुरु का मदनमोहन हिन्दी उपन्यास का पहला व्यक्तिवादी नायक है। वह आर्थिक व्यक्तिवाद का ज्वलंत प्रतीक है। अवस्था के संग उसकी स्वतन्त्रता बढ़ी है। युवक होने पर वह खुलकर खेलता है। मार्क्स ने पूंजीपति वर्ग के जो लक्षण[28] बताए हैं वे मदनमोहन में वर्तमान हैं। वह परम्परागत सामाजिक सम्बन्धों से मुक्त

होकर नूतन व्यक्तिगत संबंध को स्वीकार करता है। वह वेश्याओं के आगे अपनी सुशीला पत्नी और दरबारियों के आगे अपने सच्चे मित्र को ठुकरा देता है। वह परिवार के भावात्मक बंधन को इस तरह छिन्न भिन्न कर डालता है कि अपने गुलाब जैसे कोमल और गंगाजल जैसे निर्मल बालकों की उसे सुधि नहीं रहती। नाच गान और विलास-वासना में मग्न होकर वह धर्म, नीति, समाज और राष्ट्र को भूल जाता है। द्रव्य और अधिकार के नशे में ऐसा चकचूर हुआ कि लोक-परलोक की कुछ खबर न रही। वह अपने अधिकार और स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता है। वह पिंजड़े का पंछी बनकर रहना नहीं चाहता। वह अपने हितों को समझता है। अपने को अपना निर्णायक मानकर वह परामर्शदाता मित्र को स्पष्ट कहता है मैं अपना नफा नुकसान समझता हूँ। व्यक्तिवाद और अहंवाद अभिन्न होते हैं। मार्क्स की भाँति श्रीनिवासदास ने उस महाजनी सभ्यता का नकाब उतारकर रख दिया है जहाँ मानव सम्बन्धों का आधार रुपया है जहाँ प्रीति स्वार्थपरता का दूसरा नाम है, जहाँ परम्परा आदर नहीं है। इसी प्रकार सौ अजान एक सुजान के सेठकुमार धृष्टता अशालीनता और बेहयाई का जामा पहन सब भाँति निरंकुश और स्वच्छन्द बन गए थे। इनके समान धूर्त रसिकलाल का सद नायक भी परिवार और समाज से दूर अपना छोटा संसार बसाता है और पत्नी के प्रणय-प्राण को तोड़कर वेश्या के जाल में फँसता है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आर्थिक परिवर्तन के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नहीं रहा। सेठ और साहूकार उद्योग-व्यवसाय कृषि वाणिज्य में पूँजी लगाकर धन संचय करने लगे। वे व्यक्तिगत वैभव के मद में उच्छृंखल और स्वेच्छाचारी होकर लापरवाही भरी विलासिता की ओर मुड़े। पूँजीवादी व्यवस्था सामाजिक उदासीनता को बढ़ावा देती है।

व्यापारी वर्ग की भाँति अंग्रेजी शिक्षित वर्ग की प्रवृत्ति व्यक्तिवादी थी। अंग्रेजी शिक्षा का सबसे पहला और सबसे घातक प्रभाव यह हुआ कि भारत का शिक्षित समाज जो कुछ प्राचीन और भारतीय था उसे हेय और जो कुछ नवीन तथा पाश्चात्य था उसे श्रेष्ठ समझने लगा। इस देश में सरकारी नौकरी स्वर्ग का दरवाजा रही है और अंग्रेजी शिक्षा उसकी सुनहरी कुंजी। सफेदपोश गुलामों और शिक्षित बेकारों को पैदा करने वाले स्कूल कालेजों में पढ़ लिखकर मुट्ठी भर लोग सम्पन्न बन गए तथा विशाल जन समूह रूढ़िवादी अशिक्षित और निर्धन बना रहा। शिक्षित वर्ग नगरों में

पाश्चात्य सभ्यता म पल रहा था अशिक्षित वग गावो म भारतीय सभ्यता को पाल रहा था। दोनो के यक्तिगत और सामाजिक आदर्शों मे मेल नही रहा। नव शिक्षित वग यक्तिवादी बन गया। वह जनता से दूर अपने वग स्वाथ मे लीन रहता था। उसे इसका भान नही रहा कि समाज का अस्तित्व है और वह समाज का अग है। अग्रजो की तरह रिजव रहने की लालसा सुरक्षा और स्थायित्व की भावना श्रेष्ठता का बोध आदि ने यक्तिवादी भाव को दृढ किया। और सामाजिक दायित्व का दुबल बना दिया। यक्ति और समाज म सामजस्य नही रहा। समाज स विभिन्न नवशिक्षित वग के यक्ति स्वातन्त्र्य का दिग्दशन लज्जाराम मेहता और किशोरीलाल गोस्वामी क उपन्यासो म कराया गया है।

राल्फ फाक्स की मान्यता है कि 'उपन्यास का सम्बन्ध व्यक्ति से है वह समाज और प्रकृति के साथ यक्ति के सघष का महाका य है उसका विकास उस समाज म ही सम्भव हो सकता था जिसमे समाज और यक्ति क बीच सन्तुलन नही है और मनुष्य एव मनुष्य या प्रकृति क बीच सघष है। ऐसा समाज पूजीवादी समाज है।[3] यक्ति और समाज क सघष की झलक हिन्दी उपन्यास की प्रथम नायका भाग्यवती (श्रद्धाराम फिल्लौरी भाग्यवती) और प्रथम नायक तिलकधारी (बालकृष्ण भट्ट रहस्यकथा) के जीवन म ही मिल जाती है। दोनो सामती सस्कार से मुक्त हाकर समाज स सघष करते ह और अपने भाग्य का निर्माण करन म सफल होते हैं। भाग्यवती एक वष म तीन आने पैसे स पाच सौ रुपये जमा कर लेती है। यह भले ही विश्वास योग्य नहीं हो इससे साधारण स्त्री की असीम क्षमता का परिचय मिलता है। तिलकधारी सम्पन्न हाकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से चीन तक की यात्रा करता है।

हमारे उपन्यास लेखक स्वस्थ सामाजिक चेतना म सम्पन्न थे। वे यक्तिवाद का समथन नही कर सके। उनके पात्र समाज और परिवार स अलग होकर फिर मिल जाते हैं। उन्हें उत्तरदायित्वहीन यक्तिगत स्वाधीनता स सहानुभूति न होकर भी मानवता मे आस्था है, इसलिए उन्हाने यक्ति का हृदय परिवतन करा दिया है। उन्होंने समाज से यक्ति के विच्छिन्न होने की चर्चा की है पर यक्ति का अपने कतव्य और दायित्व का पथ दिखाकर समाज से भिन्न नहीं होने दिया है। उनके मत से समष्टि यष्टि के लिए नहीं वल्कि व्यष्टि समष्टि क लिए है। वे समाज से विमुख यक्ति को खलनायक बनाकर

म पुष्ट होते थे भले ही उनके अनुनानन वनाज उन्ह नायक नायिका का पद न न। बहुधा उनके न्ना नायक होते हैं एक व्यक्तिवान्ी होता है और दूसरा व्यक्तिवान्ी होते हुए भी सामाजिक होता है। दूसरे की सहायता से पहले का सुपथ पर लाकर उसके माध्यम से वे अपना सुधारवादी आदर्श व्यक्त करते हैं। व्यक्ति का यक्ति परिवार समाज और देश का उद्धारक बनाकर उन्होंने उसका महत्व बड़ी विलक्षणता से प्रतिपादित किया है।

आंग्ल शासन-व्यवस्था

अंग्रेजी शासन ने विभिन्न भारतीय भाषाओं म आधुनिक साहित्य के उत्थान क लिए वातावरण तैयार किया। हिन्दी साहित्य उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से ही अंग्रेजी सम्पर्क की छाया में आने लगा था किन्तु वास्तव म अंग्रेजी सम्पर्क और उससे प्रभावित होने का अवसर उसे उसके उत्तरार्ध म मिला। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दी साहित्य को प्रश्रय नहीं दिया। फोर्ट विलियम कॉलेज की नीति उर्दू और बंगला क लिए लाभप्रद हुई। गिल्क्राइस्ट और केरे की उन भाषाओं पर इतनी कृपा थी कि वे उनके पिता ही कहे जाते हैं। हिन्दी को ब्रिटिश साम्राज्य का भी आश्रय नहीं मिला। पिछली एक सदी म वह अपने पर पर खड़ी होकर आगे बढ़ी है। सामंत युग के साथ ही राजकीय सहारा चला गया। अंग्रेजी सम्पर्क का महत्त्व राजाश्रय प्रदान करने म नहीं वरन उससे वंचित करने म है। जैसा कि बताया जा चुका है सन सत्तावन सामंती व्यवस्था के प्रसादमय प्रभाव के अन्त और अंग्रेजी शासन के व्यापक प्रभाव के आरम्भ का सूचक है। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद अंग्रेजी प्रभाव भारतीय जीवन और साहित्य पर प्रबल और स्पष्ट रूप से पड़ने लगा। भारतीय जीवन और साहित्य म अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध म जितनी ही जड़ता थी उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध म पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति साहित्य और विचार के उत्तेजक सम्पर्क से उतनी ही चेतना आई। पुराने उपन्यासों म साहस, प्रेम, वीरता देशभक्ति और समाजसुधार की व्यंजना के मूल म नवजागरण की उन्मादना है।

कई सौ वर्षों की अराजकता और अशान्ति के बाद व्यवस्था और शान्ति कायम कर अंग्रेजी राज्य ने साहित्य को क्षतिपूर्ति एवं नवनिर्माण के लिए अनुकूल अवसर प्रदान किया। भारत का पूर्व इतिहास विदेशी आक्रमण और गृहकलह का इतिहास बना हुआ था। अंग्रेजी शासनकाल म शान्ति

और सुरक्षा समूचे देश में वास करने लगा और विदेशी आक्रमण बन्द हो गया। इस स्थिति म भारतवासियो का अपने भूत वतमान और भविष्य पर गम्भीरतापूवक विचार करन का अवसर मिला। हिन्दी-लेखको को गुण दोष परखन की सूक्ष्म दृष्टि मिली थी। उन्होंने मुसलमाना और अग्रेजी राज्यो की विशेषताओ और दुबलताओ को अच्छी तरह समझने का प्रयास किया। राजनीतिक एकता सामाजिक समानता धार्मिक सहिष्णुता राष्ट्रीय सुरक्षा, यातायात की सुविधा और नवीन शिक्षा प्रणाली अग्रेजी राज्य की विशिष्ट उपलब्धियाँ थी। अत लेखको न अग्रेजी राज्य का हार्दिक स्वागत किया और कविता नाटक उपन्यास आदि म उसकी सराहना की। इसे उनका राजभक्ति नही अपितु गुण ग्राहकता मानना चाहिए। सुरक्षा और स्थायित्व का वातावरण गाहस्थ उपन्यासो मे व्याप्त है। आग्ल शासन प्रणाली स जासूसी उपन्यास प्रत्यक्षत प्रभावित है। खुफिया विभाग स उपन्यास लेखका का कच्चा माल मिला। पुलिस वाले कहने के लिए तो जनसेवक रहे हैं पर अपन वचन और व्यवहार से अपराधी की अपेक्षा निरपराध को अधिक आतंकित करते रहे हैं और इसलिए अपराध की छानबीन म उन्हे जनता का सहयोग नही मिला है। वास्तविक जीवन के अनुरूप ही उपन्यास म जासूस और उसकी जासूसी मे लोग सहानुभूति प्रदर्शित नही कर सके। फलत पुलिस की भाँति पुलिस-उपन्यास बदनाम रहा और उसक प्रचार प्रसार म बाधा हुई।

राष्ट्रीयता

अग्रेजो की शासन-व्यवस्था प्रशसनीय थी किन्तु उनकी शासन नीति अत्यन्त हानिकर थी। उन्होंने भारत म जिस शान्ति की स्थापना की वह मरघट की शान्ति थी। उसम जीवन का सन्देश नहीं था मौत की आहट थी। आर्थिक समृद्धि से रहित पराधीन देश की राजनीतिक शान्ति स स्वतत्र देश की अराजकता ज्यादा प्यारी होती है। जब कम्पनी ने विक्टोरिया क हाथ भारत को वेच दिया और १८५८ मे महारानी का उदारतापूण घोषणा पत्र सुनाया गया तो लोगों ने सन्तोष का अनुभव किया जो स्वाभाविक था। लेकिन आशा और विश्वास का वातावरण अधिक दिनो तक टिक नही सका। लोगों ने जिस परिवतन का स्वागत किया था वह शासन का परिवतन नही वल्कि शासका का परिवतन सिद्ध हुआ। अग्रेजी शासन के विरुद्ध एक ऐसी भावना अगडाई लेकर खडी हो गई जिसे राष्ट्रीयता की सज्ञा दी जाती है।

अंग्रेजों के पहले भी भारत में विदेशियों ने आकर राज्य किया था पर उनमें और अंग्रेजों में बहुत अंतर था। पूर्ववर्ती शासकों ने भारत को अपना घर बना लिया था। वे देश के अंग बन गये थे। देश के उत्थान पतन में उनका उत्थान-पतन था। भारत में उनका शासन भारतवासियों का शासन था। अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन इससे सर्वथा भिन्न था। अंग्रेज ऐसे विदेशी शासक थे जो भारत को अपना देश मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनका शासन कलकत्ता से होता था लेकिन उसकी बागडोर लन्दन में रहती थी। उनका उत्थान-पतन इंगलैंड के उत्थान-पतन पर अवलम्बित था। भारत में पहली बार ऐसे शासकों का आगमन हुआ जो अपने को विजयी समझते थे। भारतवासियों ने पहली बार वास्तविक पराधीनता का अनुभव किया। अंग्रेजों के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वामी के प्रति दास का दृष्टिकोण रहा।

अंग्रेज यहाँ व्यापार करने के लिए आये लेकिन शासन करने लगे। शासक बनने के बाद भी वे बनिया बने रहे। कम्पनी राज्य के समान विक्टोरिया का राज्य भी व्यापार के लिए था। पूंजीवादी साम्राज्यवाद की असभ्य बर्बरता धीरे धीरे प्रकट होने लगी। पूंजीवादी सभ्यता घर में घूंघट लटकाये रही परदेश में आकर नंगी हो गई।[30] भारत के उद्योग धंधे नष्ट हो चुके थे, अब विदेशी पूंजी से नए-नए उद्योग स्थापित किये गये। किसानों को लूटने में देशी जमींदार का साथ विदेशी जमींदार देने लगे। किसान महाजनों के चंगुल में फंस गये और स्वयं भूखे रहकर दूसरे की तोंद भरते रहे। फ्लोरेंस नाइटिंगल ने १८७८ में कहा था, 'दुनियाँ का सबसे करुण दृश्य देखना हो तो भारतीय किसानों को देखो।'[31] एशिया और अफ्रीका के स्वाधीन देशों के साथ युद्ध किये गये और उनकी लपटों में भारत के जन जन को झोंक दिया गया। हिमालय के आँगन में टैक्स, अकाल, महंगी, बेकारी और महामारी के प्रलय नृत्य होने लगे। भारत भिखारी बन गया और उसकी लक्ष्मी सात समुद्र पार दूकानदारों के देश में बंदिनी बन गई। पं० नेहरू ने लिखा है, 'सोने की नदी इंगलैंड की ओर बहती रही।'[32] उनके समान ही देशभक्ति से तड़पते हुए हृदय की भाषा में भारतेन्दु ने लिखा था

अंगरेज राज सुख साज सज्यो अति भारी
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।

भारत की आर्थिक अवस्था पर मुसलमानों की युद्ध विजय की अपेक्षा

अंग्रेजों की युद्ध विजय का अधिक गंभीर और घातक प्रभाव पड़ा। भारतेंदु काल में कहा था। जाता कि मुसलमानी राज्य हैजे का रोग है अंग्रेजी राज्य क्षय का।[33] पूर्व आक्रमणकारियों और विजेताओं के पास संहार के अस्त्र थे उत्पादन के उन्नत साधन नहीं थे।[34] यहीं बसने वाले विजयी शासक धन का संचय या अपव्यय करते थे तो वह यहीं रह जाता था। अतः राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं उद्योग व्यवसाय का ह्रास नहीं होता था। अंग्रेजी काल में आर्थिक विनाश का क्रम जारी रहा और पुनर्निर्माण का अवसर नहीं आया। फिर शोषण का यन्त्र ऐसा था कि पकड़ में नहीं आता था। स्वाधीनता और जनतन्त्र के दावेदारों ने जिस आर्थिक नीति को अपनाया था उसे हमारे सूक्ष्मदर्शी साहित्यकार समझते थे।[35] उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय जनता के शोषण में इंगलैण्ड की साधारण जनता का हाथ नहीं है।[36] अंग्रेजी राज्य के अन्यायों और अत्याचारों का भंडाफोड़ कर उनके विरुद्ध जनमत तैयार करने में उनका प्रयत्न स्तुत्य है।

अंग्रेजों और उनसे पहले आने वाले विदेशियों में एक अंतर और था। मुसलमानों और हिंदुओं की संस्कृति में समन्वय हो गया था। बहुत से हिन्दू मुसलमान बन गए इसलिए हिन्दू संस्कृति के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति बनी रही। अंग्रेज ऐसे विदेशी थे जो भारतवासियों में घुलमिल नहीं सके। दोनों के बीच खाई बनती गई और सत्तावन के विद्रोह के बाद तो इतनी चौड़ी हो गई कि देश दो जातीय खेमों में बंट गया। जब भारतवासियों ने देखा कि अंग्रेजों की भाषा साहित्य धर्म और संस्कृति उनकी इन वस्तुओं से भिन्न है और उन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लादी जा रही हैं तब उनके मन में घोर प्रतिक्रिया हुई।

भारतीय सभ्यता इतनी प्राचीन समृद्ध और सशक्त थी कि अंग्रेजों के पूर्व आने वाली सभी सभ्य असभ्य विदेशी जातियों को उसने आत्मसात कर लिया। अब उसका पतन हो रहा था अतः पाश्चात्य सभ्यता की श्रेष्ठता स्वीकृत और प्रमाणित हुई। अंग्रेजों की भाषा रहन सहन धर्म विचार और रीतिरिवाज की जिस विभिन्नता से वर्ण विद्वेष की उत्पत्ति हुई उसी से स्वदेशानुराग का पोषण हुआ।[37]

अंग्रेजों की शासन प्रणाली आर्थिक नीति और सांस्कृतिक साम्राज्य वाद ने भारतवासियों के हृदय में देशप्रेम की चिनगारी सुलगा दी। स्वामी

दयानन्द ने पहले पहल घोषणा की कि भारत भारतवासियो का है[38] और
स्वराज्य का मत्र दिया
जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा
मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर
माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य
भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।[39]

भारतेंदु ने अपनी वाणी म अपनी सपूर्ण शक्ति और विदग्धता भरकर
देशमाता की दुर्दशा पर आँसू बहाने के लिए लोगो को पहली बार पुकारा।
मिश्र-बधु के मत से 'इतना अधिक स्वदेशाभिमान शायद ही किसी म उस समय
हो।[40] आधुनिक भारत के उक्त दो नेताओं निर्माताओं और प्रतिनिधियों ने
जागरण का शख उस समय फूका जब उस इडियन नेशनल काग्रेस का
जो अग्रेजी भाषा म जमींदारो और पूजीपतियों की माग पश करने वाली
अग्रेजी शिक्षित वग की सस्था थी[41], नाम भी नही था। एक भारतेंदु ने जो
किया वह एक सस्था से शायद ही सभव हो। हिन्दी साहित्य पर आग्ल
प्रभाव दिखाने के जोश म कुछ आलोचक इन बातो को भूल जाते हैं और
राष्ट्रीयता के बीजारोपण का श्रेय अग्रेजी शिक्षा और अग्रेजी शिक्षा प्राप्त
वाल वग को देते हैं। राष्ट्रीय भावना राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक
परिस्थितियों की उपज थी। उसके विकास म पाश्चात्य विचारो का प्रभाव
पड़ा भी तो वह अत्यत गौण और सीमित है। जब तक किसी व्यक्ति या राष्ट्र
म बीज रूप में कोई भाव नहीं रहता तब तक उसके लिए बाह्य प्रभाव फल
दायक नहीं होता। राष्ट्रीयता की परम्परा पूवकाल स आ रही थी।[6] यद्यपि
उसम पुनरुत्थान का भाव था।

मुगलकाल की राष्ट्रीयता म धार्मिकता की छाप थी कम्पनी काल
की राष्ट्रीयता में सामती रग था अग्रेजी राज्यकाल की राष्ट्रीयता में
शासक के प्रति शासित की भावना का उभार था। उसम सकीर्णता और
एकागिता नहीं थी इसलिए वह पश्चिम की उस राष्ट्रीयता से नितात भिन्न
थी जिसका दूसरा नाम उपनिवेशवाद है। उसम प्राय वे सभी तत्व थे जो
गांधी-युग में काग्रेस के मूलभूत सिद्धात बने। वह सांस्कृतिक राष्ट्रीयता
थी। उसम अतीत के आलोक में अपनी वतमान हीनता को देखकर विश्व
के प्रगतिशील देशो की पंक्ति म सम्मिलित होने की अदम्य अभिलाषा थी

धम जाति सप्रदाय वग क भेदभाव को भूलकर यापक मानवीय सहानुभूति क आधार पर सगठित होने का आद" था और या आलस्य अधविश्वास आडबर धय महनशीलता आदि का ठुकराकर त्याग और बलिदान द्वारा स्वत्व ग्रहण करन का सकल्प । यह समय की गति को पहचान कर देश के समस्त अभावो को मिटाने और सर्वांगीन विकास करने का महाका०यात्मक प्रयास था ।[43] उसम राजनीतिक आर्थिक प्रश्नों के अतिरिक्त सामाजिक सास्कृतिक प्र नो का भी समावेश था । अत उसमे विद्राह और क्राति की अपक्षा समझौता और सुधार की ओर अधिक झकाव था । राष्ट्रीय भावना की "यजना उप"यास मे मुख्यत वतमान क प्रति सजगता और अतीत क अनुराग म हुई है । सामाजिक और ऐतिहासिक उप"यास इस तथ्य का स्पष्ट द्योतन करत हैं ।

अग्रजी राज्य म के द्रीय शासन रेल डाक तार और सिक्के ने मिल कर भारत को एक राष्ट्र बना दिया । अशोक और अकबर जस महान् हि दू मुस्लिम सम्राटो क "ासन काल मे भी देश एक राजनीतिक इकाई नही बना था । राजनीतिक एकता अग्रजी "ासन की एक अपूव देन थी । यातायात क वनानिक साधनों का उपयाग राजनीतिक आर्थिक स्वाथ के लिए किया गया था और उनम उनकी पूर्ति भी हुई तथापि वे अंग्रेजी राज्य के वरदान सिद्ध हुए । साम्राज्यवादी डलहौसी न रेल तार   डाक और सडक की   यवस्था करने के समय शायद ही सोचा होगा कि वह समाज सुधारक बेंटिक स बढ कर रचनात्मक भूमिका अदा करन जा रहा है । यातायात क नए साधन नवयुग के वाहक हुए और रेल तो नवीन भारत का प्रतीक बन गयी । आवागमन की असुविधा से मनुष्य क साथ उसक विचार भी भौगोलिक सीमा म बध थ । बलगाडी क यग क बाद रेलगाडी का युग अदभुत परिवतन लकर आया । लाग दूर दूर की यात्रा करन लग । जान पहचान बढी । एक प्रा त दूसरे प्रा त के निकट आया तथा एक दूसरे क साहित्य से परिचित और प्रभावित होन लगा । भौगालिक दूरी के साथ मानसिक दूरी मिटी । मध्ययग की दीवारें गिरन लगी । सकीणता का स्थान उदारता न लिया । लागो म समान भाव विचार का सचार हुआ और जातीय एकता का आद" सामन आया । १८८३ म इल्बट बिल आ दालन के विरुद्ध आ दोलन कर भारतीय शिक्षित समुदाय ने इस एकता का प्रदशन किया । भारते दु क कालचक्र क अनुसार आर्यो म ऐक्य का बीज इसी समय बाया गया ।

साहित्य मे आधुनिकता

'रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाइ' म सह अस्तित्व बंधुत्व और समवेदना का एक नया स्वर था जो भारत के विराट जनसमुदाय की भावात्मक एकता का प्रतीक था। बाबू श्यामसुन्दरदास[४४] ह्रासवादिनी शृंगारी कविता के प्रतिकूल आन्दोलन के साथ साथ साहित्य म एक नवीन चेतना का आरम्भ उस दिन से मानते हैं जिस दिन स्वय सरस्वती ने राष्ट्र भाषा के प्रतिनिधि कवि के कठ म बठकर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी'। उनका यह कथन सवथा सत्य है

मध्यकालीन भक्तिकाल के मूल म जस शासक और पडोसी विदेशियों के अधिकाधिक सपक से उत्पन्न परिस्थिति तथा अपनी पूव सस्कृति के स्मरण द्वारा अपने उद्धार की बेचनी दिखाई पडती है ठीक उसी प्रकार बीसवी शती के आरम्भ म ही हिन्दी-साहित्य के आधनिक काल का उदय भी अत्यन्त स्वाभाविक कारणो से और अत्यन्त स्वाभाविक परिस्थिति म हुआ।'

पूव मध्यकाल म सास्कृतिक चेतना साहित्यिक चेतना बनकर प्रकट हुई आधुनिक काल म राष्ट्रीय चेतना साहित्यिक चेतना बनकर। पूव मध्य काल म साहित्यिक चेतना कविता के माध्यम म और आधुनिक काल म मुख्यत गद्य के माध्यम से प्रकट हुई। सामन्तवाद के साथ साथ साम्राज्यवाद के प्रति बढ़ते हुए विरोध भाव ने साहित्य जगत म मध्ययुग का अन्त और नवयुग का आरम्भ किया। इस दृष्टि म आधुनिक हिन्दी साहित्य (जो पराधीन भारत म विकसित हुआ है) राजभक्ति के प्रति देशभक्ति का विद्रोह है।

नई राष्ट्रीय चेतना एव पाश्चात्य विचार के सघात से नवजागरण की लहर तरंगित हुई। उसके स्पश से हिन्दी साहित्य का मन आकाश से धरती की ओर हो गया। मध्यकाल म काव्य की, और काव्य म भक्ति एव दशन की प्रधानता थी। तुलसी सूर कबीर पहले भक्त थ तब कवि। प्रसादयानक काव्य लौकिकता का यत्न था पर अलौकिक रूपक के कारण लौकिक कथाओ और पात्रों की स्थूल वास्तविकता विलीन हो जाती थी। शृंगारी कवियों का वक्तव्य न तो पूणत ऐहिक था न पूणत आत्मपिक। ग्रियसन ने कहा था कि १६वीं शताब्दी के मध्य से लेकर वतमान काल तक भारतीय साहित्य म जो कुछ उत्तम और महान है उसका सम्बन्ध राम और कृष्ण की कथाओं म है।[४५] गोस्वामीजी की धारणा थी कि प्राकृत जन का गुणगान करने से शारदा

का पश्चाताप होता है। आधुनिक युग में कला या साहित्य धार्मिक अभिव्यक्ति बनकर नहीं रह सका। मर्त्य को ही स्वर्ग बनाने की कामना तीव्र हो उठी और मानवता की पूजा होने लगी। इस नये विश्वास को पश्चिम की भौतिकता प्रधान सभ्यता से बल मिला। भोगवाद वर्तमान युग और साहित्य की आत्मा बन गया। उपन्यास लौकिक रस का साहित्य है। उसके अस्तित्व के लिए ऐहिकतापरक भाव अत्यन्त आवश्यक था। उसने धर्म और मोक्ष को छोड़कर अर्थ और काम से नाता जोड़ लिया। वह नया माध्यम था इसलिए उसमें नये प्रसंगों का समावेश हो सका जब कविता में भक्ति शृंगार की परम्परा जीवित रही। मध्ययुगीन भक्ति विरक्ति के स्थान में मानवीय राग रूप का वर्णन करना उसका प्रधान लक्ष्य रहा है। विवेच्यकाल में प्रथम सांसारिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी हैं जिनकी दृष्टि आत्मा की अपेक्षा देह पर विशेष है।

विश्व की कई भाषाओं की भाँति हिन्दी में भी कविता के ह्रास के साथ उपन्यास का विकास हुआ। ह्रासकाल में नूतन विषय और विधा की ओर आकर्षण होता है। उपन्यास उस बौद्धिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति है जिसका आरम्भ कलाकाल के अन्त में हुआ। नवयुग की चेतना नई अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप शिक्षित समाज में वैज्ञानिक, आलोचनात्मक एवं उपयोगितावादी दृष्टिकोण का उन्मेष हुआ जिसके लिए कविता विशेष अनुकूल नहीं थी। अतः गद्य साहित्य के प्रणयन और अध्ययन की ओर प्रवृत्ति हुई। मराठी मैथिली जैसी कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी में गद्यसाहित्य का अस्तित्व था किन्तु उसमें विविधता का अभाव था। अंग्रेजी प्रभाव सबसे अधिक गद्य साहित्य पर पड़ा। गद्य के नाना रूप निबन्ध नाटक उपन्यास आदि पल्लवित हुए। कवि का सम्बन्ध अन्तर्जगत से होता है उपन्यासकार का सम्बन्ध बाह्य जगत से। एक मुख्यतः उदात्त शाश्वत और दिव्य जीवन सत्य को व्यक्त करता है दूसरा मुख्यतः पार्थिव सामयिक और मानवीय यथार्थ को। उपन्यासकार कवि ही नहीं किसी भी कलाकार की अपेक्षा मानव जीवन के अधिक निकट रहता है। अविश्वास को स्वेच्छा से हटाना का यमन विश्वास हो सकता है।[48] जो कुछ अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है वह उपन्यास के लिए उपयुक्त नहीं होता। यह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिणाम था कि उपन्यास में असम्भव के बदले सम्भव को स्थान मिला और वह प्राचीन कथा कहानी से भिन्न एक

लोकप्रिय कला रूप बना।

वैज्ञानिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण आधुनिकता का मूलाधार है। वैज्ञानिक दृष्टि का सर्वोत्तम साहित्यिक रूप तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास है। देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्म को वैज्ञानिक स्तर पर लाकर यह तक उपस्थित किया कि दुनिया में भूत प्रेत कोई चीज नहीं, जादू मन्त्र सब खेल कहानी है।[87] जादू-टोने के बदले बेहोशी की बुकनी और लखलखा का प्रयोग पुरानी मूर्खता के बदले नई किन्तु न्यून मूर्खता का प्रयोग था और यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक था।[88] चन्द्रकान्ता की घटनाओं की सम्भवता असम्भवता को लेकर होने वाला विवाद उसका द्योतक था कि जो मन बहलाने के लिए पढ़ते थे उनमें भी बौद्धिक जिज्ञासा थी। बुद्धिवादी युग के पाठक हर वस्तु को तर्क की कसौटी पर कसकर ही ग्रहण करने के लिए तैयार थे। लेखकों का पाठकों का मनोरंजन करने के साथ साथ उनमें विश्वास उत्पन्न करना था। वे बड़ी कुशलता से कथा का विन्यास करते थे ताकि पाठक समझें कि वे जो पढ़ रहे हैं वह सत्य है। कभी-कभी वे भूमिका में या उपन्यास के बीच में स्वयं कथा की प्रामाणिकता सिद्ध करने लगते थे। वे कल्पना में अधिक विचार-बुद्धि को महत्त्व देते थे इसलिए हास्य-व्यंग्य से कथा को मनोरंजक बनाते थे। हास्यरस के बोध के लिए लेखक और पाठक दोनों का बौद्धिक होना आवश्यक है। विज्ञान के आविष्कारों में अद्भुत आकर्षण था। उपन्यास में उनकी चर्चा होती थी। घटनाओं में मोड़ देने के लिए उनका उपयोग किया जाता था। श्यामास्वप्न का नायक अपनी प्रेमिका को भी पारदर्शक यन्त्र से देखने लगा था। ऐसे उपन्यास बहुत कम होंगे जिनमें पत्र-व्यवहार न किया गया हो। रेल के डब्बे रोमांस के घटनास्थल बन गए। यह यातायात के नये साधन से ही सम्भव हो सका। जेन आस्टेन ने अपनी रचनाओं में रेल की चर्चा नहीं की। हिन्दी उपन्यासकार समकालीनता से इतने विमुख नहीं थे।

मुद्रण-यन्त्र

साहित्य के लिए विज्ञान की अमूल्य देन मुद्रण-यन्त्र है। उपन्यास गद्य-युग की उपज है और गद्य-युग के निर्माण में मुद्रण यन्त्र का योगदान विशेष महत्त्व का है। मुद्रण-यन्त्र के अभाव में साहित्य के विकास और स्वरूप का निर्धारण आचार्यों द्वारा होता था। ईसाई धर्म प्रचारकों ने अठारहवीं

शताब्दी म नागरी के टाइप तयार किए उन्नसीवी शताब्दी पूर्वार्ध मे देश के विभिन्न स्थानो म मुद्रण यन्त्र की स्थापना की और धार्मिक शक्षिक ग्रथ छपवाए। उन्ह धार्मिक प्रचार करना था हिन्दी का हित साधन नही करना था फिर भी उन्होंने जो कुछ किया उससे हिन्दी साहित्य के उन्नयन म परोक्ष रूप स सहायता मिली। नागरी मे मुद्रित पहला ग्रथ मिसकीन का मरसिया (१८०२) माना जाता है। मुद्रण यन्त्र के प्रचार स साहित्य म नवीनता का सूत्रपात हुआ। वाणी पद्य के बधन में रह नहीं सकी। गद्य की विधाओ का विकास तथा आधुनिक युग का प्रवतन हुआ। किस्सागो तथा कथावाचको की आवश्यकता और उपयोगिता नही रही। साहित्य का केन्द्र दरबारों स उठकर जनता क बीच आ गया। पुस्तकें छपकर लोगो को घर बठ मिलन लगी। नए पाठक बने और लखकों पाठको म निकट सम्ब घ हुआ। उपन्यास लोकप्रिय बने उपन्यासकार लोकरुचि क अनुसार लिखन लगे और प्राचीन तथा नवीन भारतीय साहित्य स परिचित हुए।

मुद्रण कला सभी कलाओ की सरक्षिका है। लिखित उपन्यास से मुद्रित उपन्यास की प्रभावशीलता अधिक होती है। मुद्रित सामग्री वेदवाक्य के समान सत्य और प्रामाणित मान ली जाती है। मुद्रित उपन्यास के कथानक और चरित्र यथाथ और जीवित प्रतीत होते हैं। मुद्रण कला उपन्यास कला से मिलकर वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने म पूण सफल हुई। उपन्यास मुद्रित शब्दो से निर्मित ससार बन गया। पाठक उस ससार को सुन्दर या असुन्दर कह सकते थ परन्तु उसके अस्तित्व म अविश्वास नही कर सकते थे। प्रेम न एक ओर उपन्यास को पाकेट थियेटर बनाकर उसकी सम्भावना बढाई और दूसरी ओर उसे व्यावसायिक रूप देकर उसके विषय और दृष्टिकोण की सीमा निर्धारित कर दी।

पत्र-पत्रिका

मुद्रण यन्त्र स पत्र पत्रिका का और पत्र पत्रिका से गद्य साहित्य का सवर्धन हुआ। हरिश्चन्द्र मगजीन (१८७३) पहला पत्र था जिसके मुखपृष्ठ पर अकित विविध विषयो म उपन्यास भी सम्मिलित था। उपन्यास विषयक पत्र से उपन्यास का अभाव पूरा करने के लिए बाबू राधाकृष्ण दास ने नाटकोपन्यास पाक्षिक पुस्तिका निकालने का प्रस्ताव 'श्रीहरिश्चन्द्र चन्द्रिका (नवम्बर १८७८) म छपवाया जो काय म परिणत नहो हुआ।[४९] इस ढग

का पहला पत्र निकालने का श्रेय बाबू देवकीनन्दन खत्री को है। उनकी उपन्यासलहरी' का प्रकाशन उपन्यास के इतिहास में एक स्मरणीय घटना है।³⁰ लहरी' के बाद कई औपन्यासिक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं जिनमें किशोरीलाल गोस्वामी का उपन्यास (१८९८) गोपालराम गहमरी का जासूस (१९००) जयरामदास गुप्त का उपन्यास बहार' (१९०७) और रामलाल वर्मा का 'दारोगा दफ्तर (१९१०) अपेक्षया दीर्घजीवी और प्रसिद्ध हुए। या उपन्यास दैनिक और पाक्षिक पत्रों में भी प्रकाशित हुए पर मासिक पत्रक के रूप में उनका प्रकाशन विशेष महत्व रखता है। स्वतन्त्र पुस्तक की अपेक्षा मासिक पुस्तक के रूप में प्रकाशित उपन्यास खासकर जासूसी उपन्यास अधिक लोकप्रिय हुए।

पत्र-पत्रिकाएं लेखक और पाठक में सम्पर्क स्थापित करने का प्रभावशाली माध्यम थीं। उन्होंने उपन्यास पठन का शौक पैदा और पूरा किया और इस तरह उसके पाठकों की संख्या बढ़ाई। उनमें उपन्यासों के अतिरिक्त आलोचना और विज्ञापन का प्रकाशन हुआ। उनसे उपन्यास के उपयुक्त गद्य शैली के निर्माण में भी सहायता मिली। कभी-कभी उनके द्वारा उपहार स्वरूप उपन्यास बांट दिए जाते थे। इस प्रकार पत्र पत्रिकाओं ने उपन्यास को और उपन्यास ने पत्र-पत्रिकाओं को लोकप्रिय बनाया। प्रारम्भिक पत्रकारिता का इतिहास एक प्रकार से प्रारम्भिक उपन्यास का इतिहास है।

उपन्यास के रूपविधान पर उसके धारावाहिक प्रकाशन का प्रभाव स्पष्ट है। पत्र की आवश्यकता के अनुसार किसी उपन्यास का अनावश्यक विस्तार या संशोधन किया जाता था। इससे उसमें अवान्तर प्रसंग आ जाते थे उसका आकार बढ़ा और स्थापत्य शिथिल होता था। हर किश्त के अन्त में उत्सुकता जाग्रत कर पाठकों को प्रतीक्षा करने के लिए छोड़ दिया जाता था नई किश्त के आरम्भ में पूर्व कथा का स्मरण दिलाने या घटनाओं का क्रम मिलाने के लिए पुनरावृत्ति की जाती थी और उपन्यास सुखान्त बनाया जाता था। पत्र-पत्रिकाओं से घटना प्रधान उपन्यासों का संवर्धन हुआ गम्भीर और उच्चस्तरीय रचनाओं को प्रोत्साहन नहीं मिला।

सुधार-आन्दोलन

पश्चिम और पूर्व के संघर्ष से भारत के सांस्कृतिक जीवन में एक विचित्र संकट उपस्थित हो गया। नवीन विचारों के आलोक में धार्मिक और

सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन तथा नवयुग के अनुकूल नये नैतिक और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा आवश्यक हो गई। देश में अनेक सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्राह्म समाज (१८२८) के महान संस्थापक राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म के घेरे में रह कर समाज सुधार के लिए प्रयास किया पर उनके अनुयायी ईसाई धर्म की ओर फिसल गये। ब्राह्म समाज का प्रभाव बंगाल के अल्पसंख्यक नवशिक्षित वर्ग तक सीमित रहा। ईसाई मत नव शिक्षित समुदाय को परोक्षतः और दलित वर्ग को प्रत्यक्षतः प्रभावित कर रहा था। उन्नीसवीं सदी के श्रेष्ठतम महापुरुष स्वामी दयानन्द ने एक साथ ही ईसाइयों, मुसलमानों और सनातनियों के धार्मिक पाखण्ड पर आक्रमण कर दिया और वैदिक धर्म का जयघोष किया। स्वामीजी शंकराचार्य के बाद दूसरे दिग्गज धर्म प्रचारक होते हुए भी मूलतः मानवतावादी थे और अंग्रेजी शिक्षा के बिना भी प्रखर बुद्धिवादी। मनुष्योन्नति के लिए सत्य पर प्रकाश डालना वे उचित समझते थे। वे पीड़ित मानवता के पुजारी थे। बाल विवाह, जातिप्रथा आदि का विरोध और विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, विदेश यात्रा आदि का समर्थन उनके धर्म का अंग था। उन्होंने १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की और आर्यभाषा हिन्दी को अपने विचारों के प्रचार का साधन बनाकर गौरवान्वित किया। उनकी दिव्य वाणी सम्पूर्ण उत्तर भारत में गूंजकर जन मन में बस गई।

हमारे दो यशस्वी साहित्यकार श्रद्धाराम फिल्लौरी और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं धर्म और समाज के बहुत बड़े सुधारक थे। फिल्लौरीजी ने अनेक धर्मसभाओं और धर्मोपदेशकों का निर्माण किया, बहुतों को ईसाई होने से बचाया और अंधविश्वासियों का विरोध किया। आर्यसमाज की स्थापना से दो वर्ष पूर्व १८७३ में भारतेन्दु ने तदीय समाज नाम की वैष्णव धर्म संस्था की स्थापना की थी। उसके माध्यम से उन्होंने स्वदेशी वस्तु, मद्य निषेध, गो रक्षा—इन तीन प्रमुख सामाजिक राष्ट्रीय आन्दोलनों का सूत्रपात किया। समाज के सदस्य देशमान्य सज्जन थे।

पुराने उपन्यासकार स्वतन्त्र, निर्भीक और उदार विचार के मनुष्य थे। यह कहना कठिन है कि कहाँ तक उनके विचार मौलिक हैं और कहाँ तक सुधार आन्दोलनों से प्रभावित हैं। वैसे ही यह निर्णय करना कठिन है कि उनमें कौन उच्चकोटि का विचारक है, कौन साधारण कोटि का। उन्हें किसी समाज के कट्टर धार्मिक सिद्धान्त मान्य नहीं हुए किन्तु उसके

सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवतावादी विचारा से व अवश्य अनुप्राणित हुए। स्वामी दयानन्द को मार्टिन लूथर और भगवान बुद्ध के तुल्य मानते हुए राधाचरण गोस्वामी ने भारतेंदु (जून १८८६) म आर्य समाज' शीर्षक जो लख लिखा था उससे सूचित होता है कि तत्कालीन लेखक एक साथ ही आर्य समाज के आलोचक और प्रशंसक थे 'स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत वेद भाष्य और मूर्तिपूजन के विषय म हम लोगों का मत कैसा ही क्यों न हो परन्तु स्वामी जी म श्रद्धा और आर्यसमाज म हमारी सहानुभूति है। स्वामीजी के दयोपकारी होने म जो कोई सन्देह करे वह नरकी है और आर्यसमाज क देशोन्नति करने मे किसी को भ्रम हो तो वह साक्षात पशु है।"

स्वामीजी अहिन्दू को हिन्दू बनाते थ उपन्यास लखक बिगड़ को सुधारते थे। उनके सुधारवादी जोश राष्ट्रीय भावना और नतिक आदर्श पर आर्य समाज की छाप स्पष्ट है। नई राष्ट्रीयता के उत्थानकाल तक आर्य समाज हिन्दी-उपन्यास पर व्यापक प्रभाव डालता रहा। उसके सामाजिक पक्ष से तो उसका अविच्छेद सम्बन्ध रहा है। उसन विविध विषय मानवीय दृष्टि बौद्धिक यथार्थ और सजन प्रेरणा प्रदान की है। उपन्यासकारों का उपदेशात्मक प्रवृत्ति और ओज-व्यंग्य स गर्भित शैली पर उसका प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचंद की प्रेमा आर्य समाज क प्रभाव का उत्कृष्ट निदर्शन है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी क मत मे स्वामी दयानन्द क विचारों और आदर्शों स व सीधी तरह प्रभावित थे। [51]

नारी-स्वाधीनता

सामाजिक सुधार का एक क्रान्तिकारी पहलू नारी-स्वाधीनता का आन्दोलन था जो उपन्यास के लिए विशेष प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। प्राचीन भारतीय समाज म नारी का स्थान बहुत ऊँचा था। मुसलमानों के आगमन क उपरान्त वह परदे की रानी बना दी गई और बाल विवाह तथा सती प्रथा की वेदी पर उसका बलिदान किया गया। उन्नीसवीं सदी म राजा राममोहन राय ईश्वरचन्द्र और बालकृष्ण भट्ट न स्त्रीजाति की हीन दशा सुधारने पर बल दिया। भारतन्दु न बालाबोधिनी (१८७४) पत्रिका निकाल कर उसके मुखपृष्ठ पर स्त्री पुरुष की समानता का सिद्धान्त निरूपित किया। उनकी दृष्टि में नारी पुरुष की दासी नहीं, स्वामिनी थी। [52] बालकृष्ण भट्ट पतन के गत से स्त्रीजाति का उद्धार करना 'तरक्की की पहली सीढ़ी

मानते थे।[63] नारी सम्बन्धी यह दृष्टि पश्चिम की देन थी पर उसमें भारतीय भावना भरी हुई थी।[64]

चारण कवियों ने नारी को विजय का उपहार और शृंगारी कवियों ने विलास की सामग्री बनाकर उसके प्रति सामंती दृष्टिकोण व्यक्त किया था। मध्यवर्गीय लेखकों ने उसे सामंती बन्धन और वर्जना से मुक्त कर पुरुष के समकक्ष ही नहीं बल्कि उससे श्रेष्ठ माना किन्तु उसके अधिकारों के साथ साथ कर्तव्यों पर ध्यान रखा। यदि नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता तो उपन्यास में उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा नहीं होती। नारी की महिमा के के साथ ही नर नारी के स्वाभाविक आकर्षण की महिमा स्वीकृत हुई। उपन्यास मानव चरित्र का अध्ययन है और मानव चरित्र का प्रेरक प्रेम है इसलिए उपन्यास प्रेम का कथानक रहा है। उपन्यासकार नारी की स्वतन्त्रता और समानता के हिमायती थे परन्तु वह समाज में न तो स्वतन्त्र थी और न आर्थिक एवं बौद्धिक दृष्टियों से पुरुष के समान ही। फलत उपन्यास में स्वच्छन्द प्रेम की अपेक्षा वैवाहिक प्रेम को प्रधानता मिली। विवाह के पूर्व प्रणय क्रीड़ा होती थी किन्तु प्रेमिका को पत्नी बनाया जाता था पत्नी को प्रेमिका नहीं। वैयक्तिक अनुभूति से उत्पन्न अबाध प्रेम को विशेष प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था बल्कि उसके लिए रोग या मृत्यु का दण्ड निश्चित रहता था। जब पुरुष-नारी के उन्मुक्त मिलन का समर्थन करने वाली पीढ़ी बनी और स्वेच्छा से विवाह करने की प्रथा चली तब प्रेम और प्रेमविवाह का वर्णन मुख्य हो गया।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान

देशप्रेम की मस्ती और समाजसुधार की उमंग में साहित्यकारों ने अतीत की उपेक्षा नहीं बल्कि उसका आकर्षण उनके देशप्रेम का एक अंग था। अठारहवीं उन्नीसवीं सदियों में पाश्चात्य पण्डितों ने शासन सम्बन्धी आवश्यकता और जिज्ञासा की भावना से प्रेरित होकर भारत की रीति नीति विधि-व्यवहार धर्म-दर्शन इतिहास कला और भाषा साहित्य का अनुशीलन किया। मैक्समूलर तो इस देश को धरती का स्वर्ग मानने लगा। इधर स्वामी दयानन्द ने प्राचीन भारतीय सभ्यता की श्रेष्ठता प्रमाणित और घोषित की तथा भारतेन्दु ने पुराण इतिहास और पुरातत्त्व का गम्भीर विवेचन किया। अतीत के आविष्कार से भारतवासियों को अपनी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर का भान और गौरव हुआ। इससे पुनरुत्थान की प्रवृत्ति जाग उठी

और ऐतिहासिक, पौराणिक रोमानी तथा तिलिस्मी उपन्यास लिखने पढ़ने की रुचि उत्पन्न हुई। सांस्कृतिक पुनरुत्थान में सुदूर अतीत के प्रति मोह और निकट अतीत के प्रति विरोध भाव था। दोनों की व्यंजना पौराणिक उपन्यासों में और उन ऐतिहासिक उपन्यासों में हुई जिनका सम्बन्ध मुगल काल से है। एक ओर टाड की राजस्थान की गाथा से बलवती प्रेरणा लेकर ऐतिहासिक उपन्यास के नाम पर रोमानी उपन्यास लिखे गए और उनमें रोमानी राष्ट्रीयता का प्रतिष्ठापन किया गया दूसरी ओर नूतन अनुसंधान के आलोक में ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास तैयार किए गये जो उपन्यास न होकर उसके उपादान हैं। पुरातत्व का प्रेम यहाँ तक बढ़ा कि तिलिस्मी उपन्यासों में भी खण्डहरों और पुराने स्थानों के मूल नामों का उल्लेख किया गया और आश्चर्य वृत्तान्त में एक पुरातत्ववेत्ता अंग्रेज को कथा-नायक बनाया गया। अनिवार्य और अनावश्यक प्राचीनता प्रेम से अतीत की अंधभक्ति भी उद्भूत हुई। कुछ लोग वर्तमान दुरवस्था को भूलकर बीते गौरव का गीत गाने लगे और प्रत्येक वस्तु को भारतीय सिद्ध करने का यत्न करने लगे। देवकीनन्दन खत्री ने आलोचकों का मुँह बन्द करने के लिए तिलिस्म और ऐयारी को भारतीय वस्तु प्रमाणित करने के प्रयास में कहा था कि माया भी नाम ऐयारी का है।'।

इस प्रकार पाश्चात्य प्रभाव के विभिन्न स्रोतों ने हिन्दी साहित्य के परम्परागत रूपों का संस्कार एवं नवीन रूपों का निर्माण किया जिनमें उपन्यास युग सत्य को स्पष्टतया प्रतिबिम्बित करने में सफल हुआ।[55]

टिप्पणियां

1- And who in time knows whither we may vent The treasure of our tongue? To what strange shore This gain of our best glory shall be sent

२- सरस्वती जून १९२० पृ० ३४२

3- There is nothing before the eyes of the natives but an endless, hopeless prospect of new fights of birds of prey and passages with appetites continually renewing for a good that is continually wasting

—बर्क के प्रसिद्ध भाषण का अंश

४- डिग्बी ने अपनी पुस्तक प्रौसपरस ब्रिटिश इण्डिया म यह मत व्यक्त किया है।

5- Great fortunes sprang up like mushroom in a day

—मार्क्स कैपिटल

६- रजनी पाम दत्त इण्डिया टूडे, पृ० १०६

7- All the civil wars invasions revolutions, conquests famines strangely complex rapid and destructive as the successive action in Hindostan may appear did not go deeper than its surface England has broken down entire framework of Indian society

—आन ब्रिटेन पृ० ३७९

८- मोरलड ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० २८८

९- एच० एच० डाडवल इण्डिया पार्ट टू (१९३६) पृ० १८९

१०- परीक्षागुरु के पात्रों म लाला ब्रजकिशोर वकील है मास्टर शिम्भूदयाल शिक्षक है अहमद हुसेन हकीम है बाबू बैजनाथ रेलवे का नौकर है हरिकिशोर साधारण व्यापारी है हरकिशन दलाल है मिस्टर ब्राइट अंग्रेज सौदागर है और फिर पण्डित पत्रकार जज शिक्षित बेकार आदि हैं। मध्यवर्ग के इन प्रतिनिधियों का केन्द्र सेठ लाला मदनमोहन है।

11- They formed a class not a caste

—एच० एच० डाडवेल वही

१२–एच० एच० डाडवेल वही
१३–देखिए 'लखनऊ'
१४–समस्यापूर्ति–सम्बन्धी मासिक 'साहित्य सुधानिधि (१८९३–९४) म ही
देवकीनन्दन खत्री की 'कुसुमकुमारी प्रकाशित हुई थी।
१५–हिन्दी भाषा म उपन्यास' सप्तम हि० सा० स० लेखमाला, १९१७
पृ० ११९
१६–उपन्यास हिन्दी प्रदीप' (जनवरी १८८२) पृ० १७
१७–गद्यकाव्य मीमांसा' ना० प्र० पत्रिका (१८९७)
१८–चन्द्रकान्ता दूसरा हिस्सा छ बीसवा बयान
१९–'साहित्य समालोचक, १९२५ भाग १, अक १ पृ० १९
२०–हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य, पृ० ३३९
२१–पृ० ४४९
२२– यहां के हिन्दू रईस धनिक लोग असभ्य हैं और पुरानी बातें उनके सिर
म भरी हैं। मुनस जो मिला उसने मेरी आमदनी गांव पहिले पूछा और
नाम पीछे। —भारतेन्दु लखनऊ
२३–भारतेन्दु की रचनाओं में प्रयुक्त।
२४–हिन्दी प्रदीप जुलाई १८८८
२५– ब्राह्मणों ही के कर म कलम था मनमाना जो आया घिस दिया राजाओ
पर ऐसा बल रखते थे कि इनके मोम की नाक थे या काष्ठ पुत्तलिका
जिसकी डोर उनके हाथ म थी—
—श्यामास्वप्न, पृ० ९

हिन्दुओं क परम पूज्य विश्वासपात्र ब्राह्मणा ने स्वाथ परायण होकर
चौपट कर दिया।
—अम्बिकादत्त व्यास 'स्वगसभा

भारत का दुरवस्थाओं क कारण ब्राह्मण और मुसल्मान लाग है
—नि सहाय हिन्दू पृ० १८

–ज्योतिषी और पुजारियों के सम्बन्ध म परीक्षागुरु' और हनुमन्त सिह
की शृखला द्रष्टव्य है।
२६–काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृ० ८६–८७
२७–आज तक हिन्दी के बहुत से उपन्यास हुए हैं जिनम कई तरह की बात

ओ राजनीति भी लिखी गई हैं, राज दर्बार के तरीके वो सामान भो जाहिर किये गये हैं मगर राजदर्बारों मे ऐयार (चालाक) भी नौकर हुआ करते थे इन ऐयारो का बयान हिन्दी किताबो म अभी तक मेर नजरा से नहीं गुजरा अगर हिन्दी पढने वाले भो इस मजे को देख लें तो कई बातो का फायदा हो

—चन्द्रकान्ता भूमिका

28- The bourgeoisie has put an end to all feudal patriarc hal idyllic relations It has pitilessly torn asunder the motely feudal ties that bound man to his natural supe rior and has left no other bond between man and man than naked self interest than callous cash payments It has drowned the m st heavenly ecstasies of religious ferv our of chivalrous enthusiasm of philistine sentimentalism in the icy water of egotistical calculation The bomgeoise has torn away from the family its sentimental veil and has reduced the family relation to a money relation

—लिटरेचर ऐण्ड आर्ट पृ० ३४

29- The Novel deals with the individual it is the epic cf the struggle of the individual against society against nature it could develop in a society where the balance b tween man and society was lost where man was at war with his fellows or nature Such a society is capitalist society

—द नोवेल ऐण्ड द पिपुल पृ० ८२

30- The profound hyp crisy and inherent barbarism of bour geois civilization lies unveiled before our eyes turning from its home where it assumes respectable forms to the colonies where it goes naked

—मार्क्स ऑन ब्रिटेन पृ० ३९१

31- The saddest sight to be seen in the East—nay probably in the world is the peasant of our Eastern Empire

—जवाहरलाल नेहरू ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्टी पृ० ४२८ म उद्ध त

32- River of gold flowed ceasele sly to England

—वही, पृ० ४००

३३–भारतेन्दु बादशाह दर्पण की भूमिका

३४–तमूर, नादिर चगज महमूद गजनवी आदि हमला करने वालो ने समय समय देश पर आक्रमण कर इस कदर नहीं लूटा था जसा विलायत की बनी चीजा से हमारा धन लूटा जाता है। य नादिर आदि लुटेरे आए एक बार लूट पाट चले गए दो चार वर्ष उनके लूट का असर रहा थाड ही दिन बाद देश फिर अपनी पहिली की सी सम्पन्न दशा में आ गया।'

—बालकृष्ण भटट हिन्दी प्रदीप'

५–भारतेन्दु ने एक पहली को पहेली स ही समझाया था

भीतर भीतर सब रस चूसे बाहर स तन मन धन मूस।
जाहिर बातन म अति तेज क्या सखि साजन ? नहि अग्रेज।

इसी प्रकार बालकृष्ण भटट ने (हिन्दी प्रदीप जून १८८६) म सकेत किया

'जहाँ तक चाहे कर बढ़ात जाय कोई हाथ पकडन वाला नही है।

३६– भूखा के हाथ का रोटी छीन दुखिया क तन के वस्त्र उतार, लोगा क प्राण का रुधिर चूस सरकार रुपया उगाहेगी और उस रुपय स इगलड की प्रबल जठराग्नि को आहुति देगी। उस रुपये से अग्रेज सिविलियनो और सिपाहियों का शराब पिलायी जायगी। उसी रुपये स विलायत क स्वाथ परायण लाभी कारीगरो का और सौदागरो का रोजगार बढ़ावगा और साथ ही हम लागो को बडे कोमल मीठ और कृत्रिम उदार वचनो म फुसलावगे कि तुम हमको प्राणो से अधिक प्यारे हो। तुम्हारे उपकार के लिए तुम्हारे ही सुख क लिए हम अपन सुखमय शीतल देश का छोडकर यहा की भयानक लू सहन है। तुम्हारे सुख के चिन्तन म हम रात रात नीद नही आती।

—बालकृष्ण भटट हिन्दी प्रदीप

३७– हजारों साहब लोग हिन्दुस्तान म एस हैं कि उन्हें बीसा वर्ष यहा रहत बीत गया पर यहा का पानी नही अब तक पिया चाहे जो खर्च हो बोतलो म भर भर विलायत का पानी आता है वही व पीते हैं। इसका नाम जन्मभूमि वात्सल्य है। नदियों क बनाव की चीजा को सूखासूखी अपने काम म लाना इसस बढ़कर उनके वास्ते और क्या बढ़प्पन हो सकता है। उनके तीर्थत्रिक अर्थात् नत्य गीत वाद्य

को लिया जाय तो उस पर ख्याल कर जो कुढ़ता है । इतनी अपूर्णता पर भी ये बुद्धिमान और सभ्यता की नाक हैं। सब तरह के गुणो म पूर्णता होने पर भी हम गवार असभ्य और मूर्ख बने हैं समय पडे की बात है।

— भट्ट निबंधमाला प्रथम भाग पृ० ५२

38- It was Daynand Saraswati who first proclaimed India for the Indians

—Annie Besant Renascent India

३९—सत्याय प्रकाश (सवत २०१६ सस्करण) अष्टम समुल्लास पृ० २२७

४०—दे० 'हिंदी नवरत्न

41- It represented the richer bourgeoisie even the poorer middle classes were not in it XX It was the organ of the English educated classes chiefly and it carried on its acti vities in our step mother tongue-the English language Its demands were demands of the land lords and Indian capi talists and educated unemployed seeking for jobs Little attention was paid to the grinding poverty of the masses or their needs

—प० जवाहरलाल नेहरू ग्लिम्पसेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्री पृ० ४९३

४२—अठारहवी शताब्दी म भी हैदरअली टीपू सुल्तान मीरकासिम महादजी सिंधिया नाना फडनवीस जसे कट्टर अग्रज विरोधी और जन्मजात देशभक्त थे। भारत पर विजय प्राप्त करने म अग्रजों को सौ वष लग गये और सौ स भी अधिक युद्ध करने पड । भारतीय प्रतिरोध का एक रूप लूट खसोट और चोरी डकती था। जस जस कम्पनी का राज्य बढ़ता गया वसे वसे अपराध भी बढते गये। सन्यासियो पिंडा रियो और ठगों के उपद्रव अकारण नहीं थे। देश के विभिन्न भागो मे अनेक राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलन होते रहे। १८५७ की क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नही थी। उसके पीछे कम्पनी के सौ वर्षों का शासन—जान ब्राइट के शब्दो में सौ वर्षों का अपराध (हण्ड्रेड इयस आफ क्राइम) था और था उस शासन के प्रति व्यापक असन्तोष।

४३—एक हिंदी प्रेमी अग्रज कलक्टर की अध्यक्षता मे भारतेन्दु द्वारा १८७७

म बलिया म "भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है" शीर्षक व्याख्यान भारतीय स्वाधीनता का प्रथम घोषणा पत्र कहा जा सकता है

'यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंग्रेज फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़ जाते हैं। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको, औरों को जाने दीजिये जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देखकर भी लाज नहीं आती। मनुष्य दिन दिन यहां घटते जाते हैं और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है। कोई धर्म की आड़ म कोई देश की चाल की आड़ म कोई सुख की आड़ म छिपे हैं। उन चोरों को वहां वहां से पकड़-पकड़ कर लाओ। उनको बाँध बाँध कर कैद करो। इस समय जो जो बातें तुम्हारे उन्नति पथ म काँटा हों उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। कुछ मत डरो। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे जात से बाहर न निकाले जायेंगे दरिद्र न हो जायेंगे कैद न होंगे बरच जान से न मारे जायेंगे तब तक कोई देश भी न सुधरेगा। बंगाली, मरहठा पंजाबी, मदरासी वैदिक जैन, ब्राह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश म अपनी भाषा म उन्नति करो।

४४– हिन्दी-साहित्य, पृ० २७८

45– From the middle of the sixteenth century to the present day all that was great and good in industani literature was bouud by a chain of custom or of inpulse or of both to the ever recurring themes of Rama and Krishna

—The Mod rn Vernacular Literature of Hindustan Chapter III

46– Willing suspension of disbelief for the moment which constitutes poetic faith

—कॉलरिज बायोग्राफिया लिटरेरिया अध्याय १२ (२)

४७– बन्धमान्ता' दूसरा हिस्सा, तेरहवाँ बयान

४८– ऐंगल्स ने भूत जादू आदि के विश्वास को आदिम-मूर्खता (Primitive nonsens) मानकर लिखा है

The history of science is the history of the gradual clearing away of this nonsense or of its replacement by fresh but already less absurd nonsense

—लिटरेचर ऐंड आर्ट पृ० ६

४९—नाटकाप यास पाक्षिक पुस्तिका

हि दी भाषा म नाटक और उप यास का सम्पूण रूप से अभाव है विशेष करके अग्रेजी और बगभाषा क अनसार उसम नाटक आज तक बहुत ही कम प्रकाशित हुए हैं और उपन्यासों के तो अभी तादश स्वाद से भी हमारे देश वाचकगण वचित हैं इस हेत ऐसा विचार किया है कि एक पाक्षिक पत्रिका २० पृष्ठ की हिन्दी भाषा की पूर्वोक्त नाम की प्रचलित हो और उसम केवल मनोहर उपन्यास और नाटक रह अनक कृतविद्यो न बगला और अग्रजी स अच्छे अच्छे नाटको और उप यासो (नावेल्स) का अनवाद करना भी स्वीकार किया है इसका मूल्य ५) साल होगा और १०० ग्राहक नियत हुए बिना प्रकाश न होगी ।

—राधाकृष्ण दास
बाबू गोपालच द्र की कोठी चौखम्भा

५०—उपन्यास लहरी का प्रकाशन मई १८९४ मे हुआ । उसका विज्ञापन चन्द्रकान्ता (१८९५ वि० स०) म इस प्रकार दिया गया है—

भारतवष म ऐसा कोइ भी हिन्दी का पत्र नही है जिसम केवल नवीन उपन्यास ही लिखे जाते हो भविष्य म चाहे एसा कोई पत्र निकले मगर उपन्यास लहरी इस ढग का पहिला पत्र गिना जायेगा ।

५१—'नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २५६

५२—जो नारी साई परुष या म कछु न विभक्ति ॥
नारी नर अरधग को साचेहि स्वामिनी होय ॥

५३—हिन्दी प्रदीप जुलाई १८८१

५४—देखिये नीलदेवी (१८८१) की भूमिका

५५—इस अध्याय के अवलोकन स आलोचको की निम्न धारणा गलत सिद्ध होती है ।

'देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहे थे उनका स्पष्ट चित्र उन कृतियों (आलोच्य उपन्यास) में नहीं है।

—पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी आधुनिक कथासाहित्य पृ० ४७

'इस युग के लेखक को जीवन से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। वे रहस्य और जादू प्रेम और रोमांस की दुनियाँ बनाते थे।

—डा० इन्द्रनाथ मदान प्रेमचन्द एक विवेचन पृ० १५४



४

पूर्व इतिहास

हिन्दी उपन्यास के इतिहास का वास्तविक आरम्भ १८८१ के उत्तरार्ध से होता है जब लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' प्रकाशित हुआ और राधाकृष्णदास का 'नि:सहाय हिन्दू' लिखा गया।[1] इससे पूर्व प्रकाशित कोई ऐसी मौलिक रचना नहीं मिलती है जो पूरी हो और आधुनिक उपन्यास की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो। फिर भी अनुवाद, अनुकरण और रूपान्तर के रूप में कई ऐसी रचनाएं निकलीं जो उपन्यास हैं अथवा उसके अत्यन्त निकट हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मौलिक अधूरे उपन्यास और उपन्यास के ढंग की बड़ी कहानियों का प्रकाशन हुआ। कुछ मौलिक ग्रन्थ प्रणीत होकर वर्षों तक अप्रकाशित रहे जो उपन्यास-सम्बन्धी तत्कालीन और वर्तमान धारणा के अनुकूल हैं। अधिकांश रचनाओं को इतिहास, कहानी, कथा, वृत्तान्त आदि की संज्ञा दी गई है, शायद इसलिए उनके वास्तविक रूप को पहचानने में भूल की गई है या उन पर ध्यान नहीं दिया गया है। उनमें 'सण्डफोर्ड और मरटन की कहानी' (१८५५) को कालक्रम की दृष्टि से प्रथम स्थान प्राप्त है। 'सण्डफोर्ड और मरटन की कहानी' और 'परीक्षागुरु' के बीच का काल हिन्दी उपन्यास का पूर्व इतिहास है और उस काल के कथाकार हिन्दी-उपन्यासकारों के अग्रणी हैं।

उपदेशप्रद अंग्रेजी उपन्यास

यह एक मनोरंजक बात है कि पूर्व इतिहास का आरम्भ अनुवाद से नहीं बल्कि अनुवाद के अनुवाद से होता है। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेज

उपन्यासकार थामस डे ने 'सैण्डफोर्ड ऐण्ड मरटन' नामक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा था। पश्चिमोत्तर प्रदेश के विद्यालय निरीक्षक पं० वंशीधर ने उसका अनुवाद उर्दू में सैण्डफोर्ड और मरटन की कहानी (१८५५) के नाम से किया। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने पहले उर्दू और फिर हिन्दी अनुवाद किया था। सम्भव है पं० वंशीधर का अनुवाद सितारेहिन्द के ही उर्दू अनुवाद पर आधारित हो। सितारेहिन्द का हिन्दी अनुवाद इसी नाम से १८७७ में मेडिकल हाल प्रेस, बनारस से निकला। उपन्यास में एक गरीब और अमीर के लड़के की चारित्रिक विभिन्नता दिखाकर शिक्षा दी गई है। सैण्डफोर्ड का लड़का हारी परिश्रमी शिष्ट और उपकारी है। इसके विपरीत मरटन का लड़का टामी लाड़-प्यार में बिगड़कर बारलो पादरी की संगति से सुधरता है। मूलकथा के साथ छोटी छोटी नीतिकथायें सम्बद्ध हैं। अंग्रेजी में दूसरे लोकप्रिय उपन्यास-लेखक डिफो का विश्व प्रसिद्ध भ्रमण-उपन्यास काशीस्थ पाठशाला के मुख्य हिन्दी पण्डित बद्रीलाल द्वारा बंगला से अनूदित होकर राबिन्सन क्रूसो का इतिहास नाम से १८६० में प्रकाशित हुआ। अनुवाद केवल प्रथम भाग का और स्वतन्त्रता के साथ किया गया है लेकिन टाइप मोटा और आकार बड़ा है। दोनों अनूदित उपन्यासों की भाषा सुबोध है।

इनसे पाठ्य पुस्तक की आवश्यकता पूरी हुई। ये हिन्दी में उपन्यास का अभाव पूरा करने नहीं आए थे। इस दृष्टि से डा० जानसन के दार्शनिक उपन्यास 'रासलास' के दो अनुवाद हुए जो सारसुधानिधि (मई १८७९) और हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका (एप्रिल १८८०) में निकले। पहला अनुवाद सम्भवतः पं० केशवराम भट्ट का है और दूसरा बाबू दीपनारायण सिंह वर्मा का, जो शायद पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ। उपन्यास हमें नील नदी के किनारे अबसीनिया में ले जाता है। उसका नायक एक राजकुमार है जो इस संसार में दुख ही दुख देखता है और सुख की खोज में अपनी बहन के साथ भटकता है। कहानी रोमानी होते हुए भी दार्शनिक चर्चा के कारण नीरस है।

मुंशी शिवनारायण द्वारा अंग्रेजी से अनूदित विद्याशक्ति रक्षित (१८६१) अध्यायों में विभाजित ९२ पृष्ठों की रोचक रूपककथा है। यह किसी उपन्यास का अनुवाद हो या न हो, रूप रंग में उसके समान अवश्य है। इसमें अनित्य नगर के धनाकांक्षी प्रसिद्धकर्त्ता और बुद्धिवान नामक चार भाइयों की कहानी

सुनाई गई है। अंत में रूपक की व्याख्या की गई है जैसे अनित्यनगर क्या है यह संसार है। वातावरण और पात्र भारतीय हैं। शैली सरल और वर्णनात्मक है। पात्र प्रतीकात्मक होते हुए भी व्यक्तित्व सम्पन्न हैं।

धार्मिक उपन्यास

उपन्यास के पूर्व और उदयकाल में ईसाई मत के प्रचार के लिए छोटी बड़ी कथाएं लिखी गईं। इनके लेखक साहित्यिक रुचि के नहीं थे अतः इनमें साहित्यिक गुण का अभाव था। कहानी उद्देश्य के सामने दब जाती थी परिस्थितियों की योजना धार्मिक सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए की जाती थी और पात्र वाद विवाद करने के लिए बनाए जाते थे पर कहानी कहने का ढंग सीधा सादा होता था प्रसंग घरेलू और घटनाहीन होते थे और पात्र बहुधा भारत के निम्नवर्ग से लिए जाते थे। धार्मिक विषय को लौकिक और साहित्यिक स्तर पर लाकर हृदयग्राह्य बनाने का यह सूक्ष्म प्रयास था। मसीही पादरियों ने भारतीय जनता को अच्छी तरह समझने और उसकी रुचि के अनुकूल सामग्री देने में बड़ी सावधानी से काम लिया। फूलमणि और करुणा का वृत्तांत (१८६५) विश्वासविजय (१८८२) 'जयसिंह की कथा (१८८४) जैसी लम्बी कथाओं को धार्मिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है।

किसी अज्ञात लेखक द्वारा उर्दू से अनूदित 'फूलमणि और करुणा का वृत्तांत बंगला का पहला उपन्यास माना जाता है। उसकी लेखिका हन्ना कैथराइन मूलेन्स नाम की एक अंग्रेज महिला थी और उसका प्रकाशन १८५२ में हुआ था। उसकी कहानी आत्मचरित शैली में कही गई है और चरित्रांकन ऐसा किया गया है मानो किसी कलाकार ने कूची के हलके स्पर्श से मोहक चित्र उतार दिया हो। एक मजिस्ट्रेट की पत्नी साधारण लोगों के जीवन की साधारण बातों का वर्णन करती है। फूलमणि का पति एक भला चपरासी है करुणा का पति शराबी और दुराचारी। दोनों स्त्रियां अपने अपने पति के अनुरूप ही हैं। एक शिष्ट और सुशील है दूसरी पति को गाली देने वाली कर्कशा। पति को सुधारने के लिए करुणा को ईसाई बनने का उपदेश दिया गया है। भाषा विशुद्ध खड़ीबोली होकर भी ब्रजभाषा और बंगला से अछूती नहीं है। अंग्रेजी से अनुवादित १६२ पृष्ठों का विश्वासविजय' केवल इसलिये उल्लेखनीय है कि इसके दो स्त्री पात्र सौदामिनी और कामिनी किशोरीलाल

गोस्वामी की 'चपला' में भी है।

मनोहर कथाएं

उपदेशात्मक कथासाहित्य के समानान्तर ही मनोहर कथाओं का विकास हुआ। इनका उद्देश्य नीति और धर्म की शिक्षा देना नहीं बल्कि विशुद्ध मनोरंजन करना था। इन्होंने उन पाठकों की मांग पूरी की और उन्हें जो निश्चित हो कर बड़ी-बड़ी कथात्मक पुस्तकें पढ़ने के आदी हो रहे थे। इनमें प्रेम और साहसिकता की प्रधानता रहती थी कथानक जटिल और सुसात होता था और दैनिक जीवन की घटनाओं के बदले प्रेमी प्रेमिकाओं के सुख-दुःख वर्णित थे। पात्र उच्च वर्ग के होते थे। उनमें वीर राजकुमार और सुन्दर राजकुमारी आकर्षण-केन्द्र थे।

उर्दू कथाकार रज्जब अली सरूर ने उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में 'फिसाने इ अजाएब' की रचना की थी। उनके तीन अनुवाद हुए शम्भूलाल का फसाने अजायब यानी किस्सा जान आलम का (१८६६), प्राणकिशन का किसाना अजायब अर्थात् मोहनी चरित्र, (१८६९) तथा श्री भट्ट का किस्सा किसान अजायब अर्थात् आश्चर्य इतिहास। प्रथम अनुवाद की भाषा फारसी मिश्रित दूसरे की बोधगम्य तथा तीसरे की नागरी लिपि में फारसी है। प्राणकिशन का अनुवाद सर्वोत्तम है। कहानी और उसकी शैली पुरानी रीति की है लेकिन उसमें नवीनता की झलक है। विनोदशंकर व्यास के मत से यह उर्दू का प्रथम मौलिक उपन्यास है।[*] सजीव और भावुक वर्णन उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। लखनऊ के वातावरण का चित्र अच्छा उतरा है। जादू तिलस्म और प्रेम के उपादान घुले मिले हैं। शाहजादा जान आलम एक तोते के मुंह से अंजुमनआरा के रूप की प्रशंसा सुनकर उसकी खोज में निकलता है और उसे जादूगर के फंदे से छुड़ा लाता है।

मूलतः अरबी में लिखित और संसार में प्रसिद्ध 'अलिफलैला' के बंगला अनुवाद का अनुवाद प० बद्रीलाल द्वारा किया गया और १८८१ में सहस्ररजनी मनोद के नाम से प्रकाशित हुआ। पूरा अनुवाद 'सहस्र रजनी चरित्र' नाम से नवल किशोर प्रेस में प्रकाशित हुआ। इसमें करमकल्ले के पत्ते की तरह एक कहानी में दूसरी कहानी छिपी है। बादशाह शहरयार को शाहरजाद एक हजार रातों तक कहानियां सुनाती है। हर रात कहानी अधूरी रह जाती है जो दूसरी रात पूरी की जाती है। प्रेम और जादू के

ताने-बाने से बुनी हुई घटनाएं मन को बरबस उलझा देती हैं। अलिफलला' को पंडित बालकृष्ण भट्ट ने उपन्यास की कोटि में रखते हुए उसकी बंदिश की सराहना की थी।[3] और इंडियन प्रेस से १९०९ में प्रकाशित उसका अनुवाद 'बाल आख्योपन्यास' कहा गया था। आधुनिक अर्थ में यह उपन्यास नहीं कहा जा सकता है पर कथाशिल्प और यथार्थ वर्णन में यह किसी भी उपन्यास से टक्कर ले सकता है। फिसाना अजाएब और 'अलिफलला' की मूल विशेषता मनोरंजकता है, जिसकी खोज उपन्यास में सर्वप्रथम की जाती है। ये हमें आनन्दित भले ही कर दें संतुष्ट नहीं कर सकते, उत्तेजना भले ही दें, प्रेरणा नहीं देते, हंसा भले ही दें रुला नहीं सकते।

फारसी उर्दू की घटनामूलक कथाओं के अतिरिक्त संस्कृत से भावमूलक कथाएं आईं। शालग्राम मिश्र लिखित मालती माधव की कथा (१८७५) भवभूति के इसी नाम के नाटक का कथात्मक रूपान्तर है। एक पत्र[4] ने इसे उपन्यास कहना पसंद नहीं किया पर दूसरे[5] ने इसका स्वागत उपन्यास का नमूना मानकर किया। यदि इसे उपन्यास माना जाए तो रघुवंश और रामायण के गद्य रूपान्तर को भी उपन्यास मानना चाहिए। इसमें अध्याय नहीं हैं, विराम चिह्न भी विरल हैं, अतः पूरी कथा दो चार वाक्यों की कथा है। मालती और माधव के मिलन और विरह से भरी सुकुमार प्रेमकहानी हृदय को छू लेती है। प्राकृतिक दृश्य और मानवीय भावों का वर्णन बहुत सुन्दर है। विषय-वस्तु उपन्यास के योग्य है। शैली में कहीं सादगी है

शीतल कमल के पत्तों की बनी जल से सींची हुई सेज पर भी बेकल लगाए कई रात्रि बिता देती है दैवयोग से कहीं आंख लगी तो एकाएक चौंक पड़ती है सब देह थरथराने लगती मुख से लम्बी सांस भरती छाती में धड़का होने से अधिक कांपते कुचों को हाथ से छिपा लेती है।

कहीं अत्यंत कृत्रिमता है जो कथा में व्याघात उत्पन्न करती है

मालती तो चित्र की लिखी सी प्रेम रस पगी सी चित्र में ठगी सी काम रंग रंगी सी प्रीति में रंगी सी मोहजाल में फसी सी अनंग कुंड धसी सी प्रेम डोर में बंधी सी शोक सागर में पड़ी सी चिंता गढ़ी सी काठ की पुतली सी बेचैन हुई बैठी थी।

बाबू गदाधरसिंह ने बाणभट्ट की कादम्बरी को उपन्यास मानकर

उसका अनुवाद बगला से किया। यह हरिश्चन्द्र मगजीन में १८७३ में क्रमश छपकर हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में १८७९ में पूर्ण हुआ और उसी वर्ष पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ। अनुवादक ने उसे प्राचीन संस्कृत उपन्यास कहा है। अनुवाद में केवल कथा का अंश है वर्णन का अधिकांश छोड़ दिया गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ और शैली सरल है। अनुवाद संक्षिप्त नहीं होता तो भी वह उपन्यास नहीं माना जाता। जब मूल कादम्बरी को आधुनिक उपन्यास की कोटि में नहीं रखा जाता है तब उसका अनुवाद कैसे रखा जायगा? तत्कालीन लेखक इसे उपन्यास मानते थे इसलिए यह उल्लेख योग्य है।

महिलोपयोगी कथासाहित्य

नाटक निबंध आदि सामान्य पुरुषों के पढ़ने के लिए थे। नई शिक्षा के प्रचलन से स्त्री शिक्षा का प्रचार होने लगा और ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता हुई जिनसे स्त्रियों को सरल ढंग से शिक्षा दी जाय। फलतः एक विशिष्ट प्रकार के कथासाहित्य की रचना होने लगी। इसे गार्हस्थ्य उपन्यास का पूर्व रूप कहा जा सकता है। इनमें उपन्यास के अनेक उपकरण हैं सीधा सादा कथानक मानव प्रकृति की परख यथार्थ चित्रण और सहज सरल गद्य शैली। इनमें नारी का नया रूप और उसके प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण मिलता है। उसकी निपट मूढ़ता को निर्दोष भोलापन मानकर उसका गुण गान नहीं किया गया है। उसे शिक्षित और सभ्य बनाने पर जोर दिया गया है। यहाँ कहानी परियों के देश से ठोस धरती पर उतर आई है। महिलोपयोगी साहित्य के इस लोकप्रिय अंग में आधुनिकता का आरम्भ है।

मेरठ और उसके आस पास में भी नागरी की अवहेलना उठाने वाले पण्डित गौरीदत्त ने 'देवरानी जेठानी की कहानी' (१८७०) लिखकर कथासाहित्य में नूतन क्षितिज का उद्घाटन किया। उन्होंने पहली बार घरेलू भाषा में घरेलू जीवन के सुख दुख की कहानी लिखी। एक बनिया के दो लड़के विवाह के बाद भिन्न हो जाते हैं इस घटनाहीन प्रसंग को लेकर उन्होंने नगर के मध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ चित्र अंकित किया है। प्रतिदिन की परिस्थितियों परिचित वस्तुओं और साधारण व्यक्तियों में ला उन्होंने अद्भुत आकर्षण भर दिया। उनकी बचकानी चलती और गोबर पाथती हुई बच्चे अपनी अल्हड़ता में महानता और क्रियाशीलता में सुन्दरता लेकर उपस्थित हैं। उन्होंने जेठानी का द्वेष देवरानी की ममता ननद भावज का स्नेह और

पति पत्नी का प्रेम स्पष्ट और अकृत्रिम रूप में व्यक्त किया है जिससे पारिवारिक जगत के मानवीय सम्बन्धों के साथ ही मानवीय भावों पर प्रकाश पड़ता है। ससुराल से ननद का भावज के संदेश भेजना कि माँ से कहना कि मुझे दो चार महीने को बुला लें किसी कविता से कम मधुर है? जो बंगला के गार्हस्थ उपन्यासों की प्रशंसा करने में थकावट महसूस नहीं करते वे यह सुखद गृह जीवन का यह दृश्य देखना चाहिए जिसमें एक साथ ही दाम्पत्य वात्सल्य और गार्हस्थ की झलक है।

रात को दोनों स्त्री पुरुष उस खिलौने और वह मगन होते जब छोटेलाल कहता आओ हमारे पास आओ वह झट चला आता और जब उसकी माँ कहती आओ हमारे पास आओ हम चीजें देंगे न आता तब दोनों हँस पड़ते कभी माँ की खाट पर से बाप की खाट पर चला जाता और कभी रोके फिर चला आता।

पंडितजी को पुरुष से स्त्री के स्वभाव की पहचान ज्यादा है। उनके पुरुष सपाट और स्त्रियाँ सजीव हैं। जेठानी का चित्रण स्वाभाविक और विश्वसनीय है। वह चर्खा कातती जाती है और देवरानी को सुना-सुना कर कहती जाती है पीसे कोई और खावे कोई। वह ठोकर खाती है पर के चौखट में और कोसती है अपनी देवरानी को। वह कर्कशा और मूर्ख स्त्री का टाइप है। देवरानी नवयुग की शिक्षित और चेतन स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। दोनों की चारित्रिक विभिन्नता अच्छी तरह उभरी है। जेठानी पति का कान भरती रहती है देवरानी पति को नागरी का अखबार पढ़कर सुनाती है। देवरानी पढ़ी लिखी होने के कारण स्वयं सुख में पलती है और पति को सुख पहुँचाती है। दिल तो वहाँ नहीं मिलता जहाँ मर्द पढ़ा हो और स्त्री बेपढ़ी हो।

पंडितजी का दृष्टिकोण सीमित नहीं है। उन्होंने स्त्रियों को शिशु पालन, गृह प्रबन्ध, पति-सेवा आदि की शिक्षा देने के लिए ही पुस्तक नहीं लिखी है। उन्होंने स्त्री शिक्षा, नागरी प्रचार, वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में अपने विचार कहानी के माध्यम से व्यक्त किये हैं। उनके विचार नवीन और सुधरे हुए हैं। वे नारी जाति के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए उसे समाज में ऊँचा स्थान देना चाहते हैं। वे परम्परा से विमुख होकर प्रगति का स्वागत करते हैं। उन्होंने उन्नीसवीं सदी के टूटते हुए संयुक्त परिवार का जो रूप

उपस्थित किया है उसमें कल्पना या आदर्श का रंग नहीं है।

वे पारिवारिक यथार्थ के जन्मदाता हैं। उनके सामने यथार्थवादी कथासाहित्य की कोई परम्परा नहीं थी। उन्होंने यह कहानी लिखकर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और गार्हस्थ्य उपन्यासों को प्रवर्तित किया है। प्रतिभा इसी तरह प्रवर्तित करती है। पुस्तक में उपन्यास के सभी अणु हैं केवल कहानी कहने की प्रणाली पुरानी है। विभाजन अध्यायों या परिच्छेदों में नहीं किया गया है, बीच बीच में मुख्य कार्यसूचक शीर्षक कोष्ठक में दे दिये गये हैं। उन दिनों इस प्रकार का शीर्षक देना भी एक नया प्रयोग था। कथा विन्यास में थोड़ा परिवर्तन कर देने से यह कहानी हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास बन जायगी। इसमें असम्भव और अद्भुत घटनाओं को झाड़ फाड़कर फेंक दिया गया है और दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं को मनोरम कथानक के रूप में गूँथा गया है जो उपन्यास का लक्ष्य होना है। लिखित शब्दों में बोलचाल के शब्दों की अनुरूपता वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने में सहायक हुई है। बातचीत कथा को आगे बढ़ाती है और पात्रों में जीवन डालती है।

मुन्शी ईश्वरीप्रसाद मुदर्रिस और मुन्शी कल्याण राय का सामाजिक पूर्वलिखित कथासाहित्य में उपन्यास के सर्वाधिक समीप है। इसकी रचना १८७२ में हुई प्रकाशन १८८३ में। देवरानी जेठानी की कहानी' की अपेक्षा इसका चित्रपट बड़ा है। इसमें मध्यवर्गीय परिवार एवं समकालीन समाज की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। देवरानी जेठानी का कलह और पिता की मृत्यु के बाद भाइयों का आपसी बँटवारा सम्मिलित परिवार प्रथा के विघटन का सूचक है। बाल विवाह के दुष्परिणाम और विधवाओं की दुर्दशा दिखाकर कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। सामाजिक रोगों के शमन के लिए स्वावलम्बन और स्त्री शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। लेखकों के आदर्श का सजीव प्रतिमा बड़ घर की बेटी गंगा है। वह उर्दू पढ़कर हिन्दी से प्रेम रखती है और शिक्षित होकर गृहकाम करती है। ऐसी नवयुवती से विवाह कर आधुनिक आलोचक भी नहीं पछतायेंगे। बाल विधवा भानो रो रोकर जीवन नहीं बिताती बल्कि घर घर लड़कियों को पढ़ाकर अपनी जीविका का निर्वाह करती है। नई नारी की यह कल्पना असाधारण होकर भी असम्भव नहीं है। लेखक का उद्देश्य उदाहरण स्वरूप शिक्षा देना है इसलिए उन्होंने अपने पात्रों का या तो बिल्कुल

उनल रग म रग दिया है या बिल्कुल काले रग म । गगा की चचेरी बहन उससे पूर्णत भिन्न है लाज उसम नाम को भी नहीं था कभी घूघट काढ लिया कभी मुह उघाड दिया । गगा म मध्यवर्गीय शिष्टता और शालीनता है उसके पति म मध्यवर्गीय मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना । जब गगा उसे कहती है क्या दूकान करने म कुछ डर है वह झट भोले शिशु की तरह जवाब देता है लो डर नहीं है लोग कहेंगे कि पढ लिखकर दूकान करते हैं । लेखक पात्रों के मन म प्रवेश करने का प्रयास करता है ।

पश्चिम के सम्पर्क से प्राचीन और नवीन विचारों म जो सघर्ष हुआ उसकी छाप इस पुस्तक म स्पष्ट है । एक ओर लेखक कहते हैं स्त्री मर्द के पैर की जूती है एक टूट गई दूसरी आ जायगी' दूसरी ओर उनकी इच्छा है कि अग्रेज स्त्रियों की तरह हिंदू लडकियाँ भी पढ लिखकर पति के घर बाहर के काम म सहायता करनी चाहिए । लेखक को जो कुछ कहना है वह स्वय कहते हैं और पात्रों से भी कहलाते है । कथाकार द्वारा मत प्रकट करने की ये प्रत्यक्ष और परोक्ष विधियाँ पूर्व की कथाओं म नहीं मिलतीं । स्त्री शिक्षा के पक्ष और विपक्ष म दो पात्रों के विचार व्यक्त कराये गये हैं । ग्रंथकार का झुकाव नये विचार की ओर है । अमनादास समझते हैं कि लडकियाँ पढेंगी तो निडर और निर्लज्ज होकर जिसको चाहेंगी चोरी छिपे चिट्ठी पत्री लिख भेजेंगी । उत्तर म मथुरादास कहते है क्या बेपढ स्त्रियों का बुरा चाल चलन नहीं होता है ।

पचतन्त्र और हितोपदेश की तरह उपदेश पद्य म न होकर कहानी के बीच बीच म गद्य म हैं । दृष्टात और पत्र द्वारा शिक्षा देने के अतिरिक्त लोककथा की भाँति अत म लडके-लडकियों को कहानी से शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया है । मुहावरों और कहावतों से भरी प्रतिदिन की बोल चाल की भाषा ने कहानी म रोचकता वार्तालाप म सरसता और उपदेश म मधुरता प्रदान की है । नौकरी पेशह तो दर्जी की सूई है कभी गजों म कभी मखमल म छोटा बडा खोटा पैसा समय पर काम देता है ये वाक्य तुरत मर्म को छू लेते हैं । प्रेम प्रसग के बिना भी सरस सुन्दर कहानी कैसे लिखी जा सकती है यह वामा शिक्षक से आजकल के कथाकार सीख सकते हैं ।

इसम दो भाइयों और चार बहनों की कहानियाँ बारी-बारी से सुनाई गई हैं । अध्याय के बदले गगा का हाल राधा का हाल आदि उपशीर्षकों

से काम चलाया गया है। यदि विभाजन अध्यायों में होता, कथानक में कसाव और अन्विति होती, तो वामा शिक्षक पुराने उपन्यास का बढ़िया नमूना होता। इसके विपक्ष में सबसे बड़ी बात यह है कि यह पूर्णतः मौलिक नहीं है। इसकी रचना पं० गौरीदत्त की देवरानी जेठानी की कहानी और उर्दू उपन्यासकार नजीर अहमद के मिरातुल अरूस के आधार पर हुई है। देवरानी जेठानी की कहानी की भाँति इसमें कथाकेन्द्र मेरठ है देवरानी जेठानी के कलह और उससे सम्मिलित परिवार में होने वाली फूट के प्रसंग हैं तथा ज्ञानो नामक एक एक स्त्री-पात्र है। कथानक और चरित्र चित्रण में मिरातुल अरूस' का प्रभाव स्पष्ट है। जिस तरह मिरातुल अरूस में पहले अकबरी और तब असगरी का हाल सुनाया गया है उसी तरह वामा शिक्षक में स्वतंत्र कथाएँ क्रम से रखी गई हैं यद्यपि प्रथम की कथाओं में एकसूत्रता है। गंगा-सीताराम मिरातुल अरूस के असगरी मुहम्मद कामिल से मिलते-जुलते हैं। मुदर्रिस की रचना में जो विचार की प्रगतिशीलता और कहानी की कला है वह नजीर अहमद की रचना में नहीं है।

जिनका हृदय प्रेम का खिलौना है उनके ही हाथों में प्रेमकथा की पुस्तक देना उचित नहीं समझा गया इसलिए देवरानी जेठानी की कहानी और वामा शिक्षक में रस का अभाव है। उर्दू से अनूदित मनसुखी और सुन्दर सिंह का वृत्तान्त (१८७८) ८० पृष्ठों की एक ऐसी रचना है जिसमें कोमल प्रेम की करुण कहानी सामाजिक व्यवहार की भूमि पर लिखी गई। गाँव के अहीर की लड़की मनसुखी अपने चाचा के आश्रय में पलती है। उसका पति घरजमाई बनकर रहना चाहता है इसलिए चाचा द्वारा निकाल दिया जाता है। उसका दुख दूना हो जाता है। एक बार मेले में अपने बिछुड़े हुए पति से मिलने का अवसर आता है लेकिन वह इस संसार से विदा हो जाती । उसकी याद में उसका पति भी मर जाता है। विषय में लोक कथा की माधुरी शैली में व्यंजना शक्ति और वार्तालाप में स्वाभाविकता है पा पात्रों को प्राणमय बनाती है।

पार्वती ने कहा जीजी ! तेरे ब्याह को तो पाँच बरस होंगे तू भी पन्द्रह बरस की हुई गौना कब होगा उसने उत्तर दिया अबके बसाख में बतावें हैं फिर पार्वती ने कहा जीजी तेरा बनड़ा तो बड़ा सुन्दर है यह बात सुनकर मनसुखी मुसकराई और कहने लगी हाँ जीजी मैंने भी कई बेर छिप छुप कर देखा था मुझे भी उसकी सूरत अच्छी लगी थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के विलक्षण विद्वान, विचारक वक्ता और उत्तर भारत के महान सांस्कृतिक नेता पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने धर्मग्रंथों और जीवन चरित के अतिरिक्त कल्पनाप्रसूत साहित्य की रचना की। उन्होंने इस नये माध्यम का उपयोग भारतखण्ड की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए किया। इसके लिए इससे अधिक उपयुक्त कथा क्या हो सकती थी कि एक शिक्षित स्त्री का चरित्र घर और बाहर में दिखाया जाय? १८७७ में भाग्यवती लिखकर उन्होंने ऐसा ही किया। भाग्यवती ससुराल आकर अपनी भोली स्वभाव और क्रिया से अपने सम्बन्धियों और पड़ोसियों का मन मोह लेती है। उसे एक दिन बिना किसी अपराध के नंगी भूखी निर्धन और निराश्रय करके घर से निकाल दिया जाता है। पति भी निर्मम होकर कहता है जहाँ उसकी इच्छा हो अकेली रहा करे। जब उसके खेलने खाने के दिन हैं तब उसे अपने पति और परिवार से अलग अपने दुख-सुख के साथ रहना पड़ता है। वह न तो मके सदेश भेजती है न ससुराल की शिकायत करती है घरेलू उद्योग धन्धे और खेतीबारी से अपना निर्वाह करती है। जब उसका ससुर उसे बुलाने का विचार करता है तब वह आती है तुरत तीर्थयात्रा के लिए निकलती है और राह में एक बार फिर अपने सबंधियों में बिछड़ जाती है। उसे जीवन में पहली बार एक ही दिन में भूख-प्यास सहन पैदल चलने और लड़के का बोझ उठाने का कड़वा अनुभव होता है। उसकी दुर्दशा देखकर विक्टर ह्यूगो की ये दो पंक्तियाँ याद आ जाती हैं जिसने पुरुष का दुख देखा उसने कुछ नहीं देखा उस स्त्री का दुख देखना चाहिए।[४]

उस पर विपत्तियाँ आती है लेकिन वह धैर्य नहीं खोती पराजय स्वीकार नहीं करती घुल मिलकर मरना नहीं जानती। अपनी बुद्धि के बल पर वह परिस्थितियों का सामना करती है खतरों से खेलती है और उन पर विजय पाती है। पतिगृह छोड़ने के बाद वह प्रेमचंद की सुमन (सेवासदन) की तरह वेश्यालय की ओर पैर नहीं बढ़ाती न ही प्रतापनारायण श्रीवास्तव की कुमुद (विदा) की तरह पितागृह की ओर मुँह करती है। उन्नीसवीं सदी की यह नई नारी अपनी हथेली में अपना भाग्य लिए नये दौर की देहली पर खड़ी है। वह पुराने संस्कारों के जर्जर बंधन को एक झटके में तोड़ डालती है और स्वयं अपने इतिहास का निर्माण करती है।

उसके व्यक्तित्व के चार रूप हैं व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक और सार्वभौमिक। वह व्यक्ति होकर भी समाज के घर में रहती है। वह

यवहार-कुशल गहस्वामिनी और आदश समाजसेविका है। वह व्यक्ति परिवार और समाज का सुधार और कल्याण करती है। मनुष्य के लिए उसके पास स्नेह-सम्भावना के सिवा और कुछ नहीं है। उसम गभीरता है तो चतुरता भी, स्वाभिमान कमठता सहनशीलता और क्षमा है तो लज्जा, ममता भावुकता और कामलता भी। वह जितनी दूर गई है उतनी दूर जाने की कल्पना कोई स्त्री कर सकती है। किसी भी देश और युग की स्त्रियाँ उसके साथ एकात्म बाघ कर सकती है। यही कारण है कि एकात म, परिवार म समाज म परदेश म जहाँ कहीं वह दिखाई पडती है हम आकृष्ट कर लेती है। हमारे हृदय पर उसका यक्तित्व उसी तरह अंकित हो जाता है जिस तरह उसक रूमाल पर उसकी कविता अंकित है।

भाग्यवती क चरित्र चित्रण म लखक की रचनात्मक प्रतिभा का ही नहीं नारी क प्रति उनक उस स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है जो केवल प्रमचद म मिलगा। नारी की पराधीनता और परवशता उनकी मूल प्ररणा है। उसके लिए उनक हृदय म अथाह करुणा और असीम समवेदना है। उनकी भाग्यवती युग युग की पददलित उपेक्षित लाछित और अपमानित स्त्रीजाति की प्रतिनिधि है। वह अपने ससुर को जाने के समय पत्र लिखती है 'मेरा क्या है मैं तो पड की मछली हू रखलोगे रहूगी निकाल दोग चली जाऊगी पर एक स्मृति रखना जहाँ जाऊँगी आप ही के यहाँ का वह मह लाऊगी। उसका ससुर अपन अत्याचार को भूल जाता है लकिन वह अपने अपमान को क्षमा नहीं भूलती और ससुराल लौटन पर कहती है, मैं तो आज लौं यही माने हुई बठी हूँ कि पराई बेटी का किसी क घर म क्या मान होता है जब चाहा गाय भस की नाइ कान पकड के बाहर कर दी। फिल्लौरीजी नारी को पशु और दासी क रूप म देखना चाहते। उसक प्रति किए गए अयाय को वे बहुत बडा सामाजिक अयाय मानते हैं। उनकी दृष्टि म नारी को पुरुष के समान जीने का अधिकार है। तभी तो उनकी भाग्यवती सम्मान क साथ घर से जाती है अलग होकर रहती है और लौटती है। वह कभी अपना सिर नहीं झुकाती है। वे नारी को अबला नहीं मानते। उनक सौ दय और प्रम से उसके त्याग और साहस की ओर वे अधिक आकृष्ट हैं। पर मैं भाग्यवती क त्याग का और बाहर म साहस का पता चलता है। यदि ये दो गुण स्त्री पात्रों को घर और बाहर म रखकर दिखाये जाते तो उनकी प्रभावोत्पादकता नहीं आती।

श्रद्धारामजी ने दो अमर स्त्री पात्र दिए हैं भाग्यवती और लडाकी। भाग्यवती हिन्दी-उपन्यास की पहली सकारात्मक नायिका है। लडाकी एक टाइप है जिसे देखकर मक्ना पडोसिन की याद आ जाती है। भाग्यवती उसे प्रणाम करती है तो मजाक समझ बैठती है। भाग्यवती सफाई देती है कि वह उसकी सास और माँ के समान है तो वह गाली मान लेती है और आशीर्वादों की झडी लगा देती है

क्या री! तू मुझ चतुराई से अपने बाप और ससुरे की लुगाई बनाती है? हसीरे ससुरे की दाढी जलाऊ वह भडुआ कौन है जो मुझ अपनी लुगाई बनावे? उसकी लुगाई बन तू अथवा उसकी बेटी देवकी। आन दे मेरे बच्चे का मैं कैसा तेरा चूडा और तेरे ससुरे की कजर दाढी फुंकवाती हूँ। यों बकती और फूट फूटकर रोती हुई अपने घर के द्वार पर आ खडी हुई। जो कोई भला बुरा स्त्री पुरुष उस गली में से होकर जाता उसी को पकड़ कर खडी हो जाती और रो रो के कहती दसो जी चउल भाग्यवती मुझ अपने ससुरे की लुगाई बनाती है।

यहाँ लडाकी के स्वर का आरोह अवरोह सुनाई पडता है उसके हाथ और चेहरे की भंगिमा दीख पडती है उसके रोने की आवाज गूंजता मालूम पडती है और इन सबसे उसके स्वभाव की सरलता झाँकती है। उसकी जीभ में उपयुक्त शब्द भर दिए गए इसलिए यह नाटकीय प्रत्यक्षता सम्भव हुई। आश्चर्य है स्त्रियों के स्वभाव बोलचाल और व्यवहार को जानने समझने और प्रकट करने में लेखक कैसे समर्थ हुए! कहाँ ये पण्डितजी और कहाँ यह लडाकी! भाग्यवती की एक पडोसिन तो अविस्मरणीय है। वह पहले भाग्यवती की ननद से रुपये उधार लेकर और समय पर लौटा कर विश्वास प्राप्त कर लेती है फिर एक दिन बहाने से गहना माँग कर ले जाती है और माँगने पर मुकर जाती है

अरी तू कौन है? और गहना कैसा? क्या तूने कुछ भाँग खाई है? बता तो सही तेरा घर किस गली में है? मैं तो कभी घर से बाहर भी नहीं निकली कि तुझे पहचान सकती? चल कोई मेरे घर में आ निकलेगा तो तुझे नाहक शर्मिंदी होना पडेगा।

भाग्यवती जैसी स्त्रियों की संख्या कम होती है। उसकी पडोसिनें जेठानियाँ ननद और सास जैसी स्त्रियों की तो गणना ही नहीं की जा सकती

है। इनमें अपूर्णता और दुर्बलता है उनके साथ अधिकांश पाठिकाएँ समानता का अनुभव कर सकती हैं। भाग्यवती गृहस्थ धर्म की प्रतिमा है तो ये समाज के चल चित्र हैं। पुरुष पात्रों में उमादत्त और वासुदेव अपने स्रष्टा के समान ही सड़ी गली रूढ़ियों को ढोने के बदले समय के साथ चलते हैं। इन प्रगतिशील बनारसी पण्डितों [redacted] बनारसी ठग अधिक विश्वसनीय लगते हैं।

पात्रों की बातचीत ने उन्हें इतना सजीव और परिचित बना दिया है कि उनमें वि ल्पण का अभाव खटकता नहीं है। भाग्यवती की सास की बातचीत सबसे अधिक स्वाभाविक है। उसकी बातों में उसके हृदय की सरलता और भावुकता लिपटी आती है। ठगों की बातचीत बड़ी लुभावनी है। वार्तालाप की भाषा पात्र और प्रांत के अनुसार है इससे पात्रों में वास्तविकता का आभास मिलता है। प्रान्तीय बोलियों का प्रयोग आरम्भ में न होकर सर्वत्र होता तो पाठकों के लिए एक समस्या खड़ी हो जाती और गुण भी दोष बन जाता। विभिन्न वर्गों जातियों और प्रकारों के पात्रों की बातचीत का हूबहू नकल करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।

उन्होंने काशीराज से लेकर नन्दा कहार तक को अपनी रचना में स्थान देकर हिन्दी उपन्यास में मानवीय यथार्थ की उदभावना की। उन्होंने काशी के अच्छे खाते-पीते पण्डितों के परिवारों का जो रूप अंकित किया है वह भारत के मध्यवर्गीय परिवार का सच्चा रूप है। उन्होंने एक शिक्षित स्त्री को मुख्यपात्र बनाकर स्त्री-समाज की झाँकी प्रस्तुत की है। स्त्रियों के दिलचस्प गप्प अंधविश्वास क्षणिक कलह स्वच्छन्द प्रेम सरल मुन्शुल आदि का वर्णन उन्होंने तन्मयता किन्तु रोचकता के साथ किया है।

कोई कहती, माईजी ! मेरे बेटे की बहू मर गई दूसरा विवाह कब होगा ? कोई बोलती माई ! मैं तो तन मन से तुम्हारी दासी हो जाऊं जो मेरा भाई विदेश से घर में आ जाय। कोई कहती माईजी मैं दस वर्ष से घर बसती हूँ भगवान ने जगत में कुछ इन्साफ नहीं बनाई जो एक भी छोकरा हो जाय तो तुम्हारी टहल करूं।

सामन्तवाद के ध्वंस-काल में देश की जो सामाजिक और धार्मिक अवस्था थी उसकी स्पष्ट रूपरेखा भी उन्होंने प्रस्तुत की है। आँख से अंजन निकाल लेने वाले ठग बहुधा सेठ और साधु के वेश में दिखलाई पड़ते हैं अर्थात सेठ और साधु ठग होते हैं और भ्रम तथा विश्वास उत्पन्न कर दिन दहाड़

लूटते हैं। पंडितजी की विलक्षणता यह है कि उन्होंने समाज की बुराइयों और करीतियो को न तो बढा चढा कर दिखाया है और न उन पर परदा डाला है। उन्होंने उनका वास्तविक स्वरूप दिखाने और उनका उचित वि यास करन म एक महान यथार्थवादी क सयम कि तु निर्भीकता स काम लिया है। जसा कि उन्होंने स्वय बताया है उनकी भावना वसी ही है जसी सोये बच्चे को जगान वाल पिता की होती है। उन्होंने विधवा क अवध प्रम और पुनर्विवाह की चर्चा करन का साहस किया। जिस समय ऐसी बात सुनकर धरती कापती थी उस समय भी सत्य, अप्रिय सत्य कहन म उ ह भय नहा हुआ।

प्रमच द का कहना था कि यथार्थवाद यदि हमारी आख खोल देता है तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान म पहुचा दता है। फिल्लौरीजी ने अपन सतुलित दृष्टिकोण के कारण यथार्थ और आदर्श लौकिकता और अलौकिकता, नीति और धम म एक सामजस्य उपस्थित किया है। राजभक्त पडितो घूसखोर पुलिस वालो लोभी ठगो चालाक चोरों, ढोंगी साधुओं और झगडालू स्त्रियो के बीच भाग्यवती का दशन होता है। घृणा-द्वेष विरोध वमनस्य के वातावरण म पारिवारिक जीवन के सुख सताप का आभास मिलता है।

पडितजी आशावादी है निष्ठावान हैं। उ ह मनुष्य की शक्ति और ईश्वर का भक्ति म विश्वास है। व धरती का स्वग बनाने क पक्ष म हैं। इससे यथार्थ की ओर उनका झुकाव मालूम पडता है। अग्रजी राज्य की शांति म भी जो सामाजिक और नतिक सकट उपस्थित हुआ उसम व पथ प्रदशन करते हैं। वे जजर पुरातन पर हलका व्यग्य और स्वस्थ नूतन का हार्दिक स्वागत करत हैं। सीधे उपदेश देन क बदले दृष्टांतो द्वारा बनाई गई गभीर बातें भी ग्रहण करन योग्य हो गई हैं। जीवन मरण मुक्ति आदि पर प्रकट किए गए विचार नवीन होकर भी शास्त्रीय आधार लिए हुए हैं। भाग्यवती व्यसन जीवन के माध्यम से कम का सदेश मिलता है। उनके उपदेश देन की कला अनूठी है। हम उ ह सुनत हैं लेकिन देखते नहीं हैं। उनके नूतन सामाजिक दशन और नतिक सिद्धांत सरल होन के साथ-साथ मार्मिक है। विवाह उस समय करना चाहिए जब बालक आप ही स्त्री का भूखा हो सिंह और शूरवीर वही है जो किसी दूसरे की मार से अपना पेट न भरे य चुभते वाक्य किसी सूक्ति स कम हैं?

उनके उपन्यास में हम उनके कथावाचक का पाते हैं। वे लिखते हैं इस ग्रंथ में मैंने एक कल्पित कहानी ऐसी सरस रीति से लिखी है कि जिसके पढ़नेहारे का मन समाप्ति पर पहुँचाए बिना तृप्त न होवे। आदि से अंत तक कहानी की रोचकता का पहला कारण है कहानी कहने का सरल स्वाभाविक ढंग। आरम्भ कितना सीधा सादा है। काशी नगर में पंडित उमादत्त जी के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम लालमणि और एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम भाग्यवती रक्खा। कहीं भी कलात्मक योजना का प्रयास नहीं है। नारी प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन तो दूर रहा उसका वर्णन भी दुर्लभ है। वर्णन विश्लेषण और व्याख्या से बचकर कहानी अबाध गति से आगे बढ़ती जाती है। फलतः पढ़नेहारे का ध्यान घटनाओं के प्रवाह पर केन्द्रित रहता है। उसे सम्बोधित कर उसके ध्यान को कभी भंग नहीं किया गया है। हास्य और करुणा धूप छाँह की तरह अपना प्रभाव डालती चलती है। दो दृश्य अभिनाटकीय लगते हैं जब भाग्यवती की जेठानी रात में शहर से बाहर ठगी जाती है और निरावरण होकर घर लौटती है तथा जब भाग्यवती मेले में बड़ी चतुरता से चारों को पकड़ती है। हिन्दी-उपन्यास में पहली बार एक नारी का निरावरण किया गया है। लेखक का उद्देश्य पाठकों को उत्तेजित करना नहीं बल्कि पात्र को लालच का दंड देना था। मादिरा का नंगी बनाकर वासना भड़काने का काम उन्होंने जैनेन्द्र और यशपाल के लिए छोड़ दिया।

उनका गद्य बातचीत का साहित्यिक रूप है जो कथा कहानी के लिए उपयुक्त होता है। भारतेंदु की भाँति शब्द मुहावरों और वाक्यों पर उनका अधिकार है और उसी तरह उनकी शैली पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। आज के लेखक मुहावरों का प्रयोग करते हैं उन्होंने उनकी सृष्टि की है। सरल लिखना अत्यन्त कठिन होता है। उसमें वही सफल होता है जो भाषा को कलम की नोक पर नचाता है। कलम के जादूगर प० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने जिसे अपनी सरस रीति कहा है वह उनकी आडम्बरहीन कला है।

भाग्यवती' शब्दों से बना हुआ एक निराला संसार है जिसमें जो कुछ है वह देखने और सुनने योग्य है। लेखक के शब्दों में यह बनहुई और कल्पित कहानी और अनुत्पन्न पुरुषों के मुख के उपदेश हैं परन्तु पढ़नहारे को सब ऐसे प्रतीत होंगे कि जैसे प्रत्यक्ष सन्मुख होने और सामने बैठ मिला करते हैं। कथानक पात्र और वार्तालाप की सजीवता और सम्भवता जो

उपन्यास की रीढ़ होती है भाग्यवती' की सर्वोत्तम कलात्मक उपलब्धि है। यह एक अद्वितीय लेखक की मौलिक कल्पना की अमूल्य देन है। रामशंकर शुक्ल, 'रसाल के मन से यह प्रथम प्रौढ़ उपन्यास' है। इसमे उपन्यास के कुछ प्रमुख तत्त्वो को पाकर आलोचको ने इसे उपन्यास की श्रेणी मे रख दिया किन्तु स्वय लेखक ने इसकी रचना उपन्यास के रूप म नही की। उनकी कलम पर अनजान म एक ऐसी कृति उतर आई जो उपन्यास बन गई। आगे जिन रचनाओ का विवेचन किया जायेगा वे निश्चित रूप से पश्चिम से प्रभावित आधुनिक उपन्यास हैं।

मौलिक प्रयास

उपन्यास के अभाव का अनुभव सबसे पहले और सबसे अधिक हिन्दी गद्य साहित्य के पिता भारतेंदु को हुआ और उन्होने उसे दूर करने की चेष्टा की। उनके लिए हिन्दी का कोई अभाव राष्ट्रीय अभाव था। उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए जन्म लिया था। यदि वे ३५ वर्ष के अल्प वयस मे इस ससार से विदा नही होते तो हिन्दी उपन्यास अधिक समृद्ध और सम्पन्न होता। उनकी प्रेरणा सम्मति और प्रोत्साहन पाकर कई लेखक उपन्यास लिखने मे प्रवृत्त हुए। उपन्यास की ओर इनका ध्यान पीछे गया था इसी से इसकी बहुतायत नहीं है। परन्तु हिन्दी म उपन्यास लिखने के लिए लोगों के हृदय म अकुर जमाने वाले यही हुए।[8] उन्होंने पत्र द्वारा पण्डित सन्तोषसिंह का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। यह पत्र लिखे जाने के बाद ही लोगों की रुचि इधर हुई और कई एक उपन्यास बगभाषा से अनुवादित हुए और नये भी लिखे गये।[9] एक तो भारतेन्दु ने उपन्यास लेखक तैयार किये दूसरे उन्होंने उस शैली और उस विचार को जन्म दिया जिसके अनुसार उपन्यास लिखे गये और जो उपन्यासकारों का प्रेरक बने फिर उन्होंने स्वय उपन्यास लिखने और अनुवाद करने का प्रयास किया। अत अन्य गद्य रूपो की भाँति उपन्यास का उदघाटन भी उन्होंने ही किया। इस दिशा म उनके कृतित्व से उनका व्यक्तित्व अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

उनकी पत्रिका हरिश्चन्द्रचन्द्रिका म पहले पहल उपन्यास का प्रकाशन आरम्भ हुआ। १८७५ के फरवरी मार्च के अकों मे प्रकाशित 'मालती प्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास है।[10] इस अधूरी रचना को उपन्यास की संज्ञा दी गई है परन्तु यह नहीं बताया गया है कि उसका लेखक कौन है और यह

मौलिक है या अनूदित। अपनी वस्तुगत और शैलीगत विशेषताओं में यह हिन्दी-उपन्यास के समान है। इसलिए उसे मौलिक मानना ही समीचीन प्रतीत होता है। एक मित्र के कारण दो भाइयों में होने वाली फूट को लेकर कहानी गढ़ी गई है। पहले पहाड़ी प्रदेश की सन्ध्या दिखलाई पड़ती है फिर दो सुन्दर युवकों का आगमन होता है। एक युवक दूसरे को मदिरा पिलाता है भाई के विरुद्ध भड़काकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करता है और एक दिन उसे मार्ग में छोड़कर और उसके पास एक पत्र रखकर चला जाता है। कथा एक सिलसिले में बंधी नहीं है न पात्रों का परिचय पहले दिया गया है। इसमें उपन्यास में कौतूहल और रहस्यमयता की सृष्टि हुई है। इस प्रकार की नाटकीयता आरम्भिक उपन्यासों की विशिष्टता है। आरम्भ में प्राकृतिक सुषमा का काव्यात्मक वर्णन भी पुराने उपन्यासों का स्मरण दिलाता है

असंख्यात झरनों का (शिखर) के चारों ओर से प्रवाह ऐसा सूचन करता है मानो मग गिरि को अपने बराबर ऊँचा देख ईर्षा कर बड़े क्रोध से चारों और मण्डल कर अति प्रबल अखण्ड जलधारा छोड़कर उसको नाश किया चाहते या श्वेत रंग देख मेघों का हिमालय का भ्रम हो गया है और सूर्य के प्रचण्ड तेज से पिघल कर बहता देख अपने विश्राम का स्थान जान पवन का आच्छादित कर बचाना चाहते हैं

यदि मालती मौलिक कृति नहीं है तो 'कविवचनसुधा' (१८७६) में प्रकाशित 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' भारतेन्दु का पहला मौलिक उपन्यास ही नहीं, हिन्दी का भी पहला अधूरा मौलिक उपन्यास है। इसके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कहानी या आत्मकथा या संस्मरण है। किन्तु इसके प्राप्त अंश तथा अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यह अपूर्ण आत्मकथात्मक उपन्यास के सिवा और कुछ नहीं है। आश्चर्य है डा० केसरीनारायण शुक्ल ने अपने 'भारतेन्दु के निबन्ध' में इसे कैसे संकलित कर दिया। इसका ढाँचा निबन्ध का सा तो नहीं है। बाबू राधाकृष्णदास ने भारतेन्दु के कथासाहित्य का परिचय देते हुए लिखा है 'स्वयं एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था जिसका कुछ अंश 'कविवचनसुधा' में छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती'।'[11] इसकी पुष्टि बाबू शिवनन्दनसहाय[12] और बाबू ब्रजरत्नदास[13] के कथन से होती है।

एक कहानी का केवल 'प्रथम खेल' उपलब्ध है। आरम्भ परम्परागत

उपन्यासों की तरह हुआ है

प्रथम खेल

जमीन चमन गुल खिलाती है क्या क्या ?
बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे ?

हम कौन हैं और किस कुल में उत्पन्न हैं आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या किसी का रोना है। पढ़ चलिये, जी बहलाने से काम है।

उपन्यास की भांति यहाँ प्रथम अध्याय के बदले प्रथम खेल है आरम्भ में शेर है पाठकों के प्रति सम्बोधन है नायक का परिचय पीछे देने का वादा है और मन बहलाने की साध है। भारतेन्दु का जीवन किसी उपन्यास के नायक के जीवन से क्या कम सरस और सक्रिय था ? उन्होंने व्यक्ति की कहानी के बहाने समाज की कहानी सुनाई है। उन्होंने दरबारियों का सूक्ष्म सजीव और वास्तविक चित्रण करने में अपूर्व कौशल का परिचय दिया है

कोई बोला हाय ! आपका फलाना कवित्त पढ़कर रात भर रोते रहे दूसरे ने कहा आपकी फलानी गजल लाला रामदास की सैर में जिस वक्त प्यारी ने गाई सारी मजलिस लोटपोट हो गई तीसरा ठंडी साँस भरकर बोला धन्य हैं आप भी गनीमत हैं बस क्या कहूँ कोई जी से पूछे चौथा बोला आपकी अंगूठी का पन्ना क्या है कांच का टुकड़ा है या कोई ताजी तोड़ी हुई पत्ती है

निम्नांकित पंक्तियों में सेवक-स्वामी की एक ही रेशमी कोड़े से खबर ली गई है और अभिजात वर्ग की सफेदपोशी उधेड़कर रख दी गई है

'कोई रंडी के भड़ुए से लड़ता है रुपये में दो आने न दोगे तो सरकार से ऐसी बुराई करेंगे कि फिर बीबी का इस दरबार में दर्शन भी दुर्लभ हो जायगा कोई बजाज से कहता है कि वह काली बनात हमें न ओढ़ाओगे तो बरसों पड़े झूलोगे रुपये के नाम खाक भी न मिलेगी कोई इस बात पर चूर है कि मालिक का हमसे बढ़कर कोई भेदी नहीं जो रुपया कर्ज आता है हमारी मारफत आता है'

मानव-स्वभाव की परख पात्रों के शब्द चित्रण वर्णन शक्ति और सरल साहित्यिक शैली में भारतेन्दु प्रेमचन्द को प्रत्याशित करते हैं। उन्होंने

एक वाक्य म वातावरण का जसा निर्माण किया है वसा नयी पीढी के उपन्यासकार एक पृष्ठ रगकर शायद ही कर सकें। सांझ फूली हुई आकाश म एक ओर चन्द्रमा दूसरी ओर सूय पर दोना लाल लाल अजब समा बधा हुआ कसेरू गडरी और फल बचन वाले सडक पर पुकार रह थे। पूव कथा साहित्य मे कथानक चरित्र और वार्तालाप का अस्तित्व था पर वणन विश्ले षण का अभाव था। उपन्यास के इस आवश्यक तत्व का दशन 'एक कहानी' म मिला। मनोवज्ञानिक यथाथ की पहली झलक भी मिलती है। लगभग छह सौ वाक्य दा दा की यह अधूरी कलासृष्टि ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व रखती है। डा० रामविलास शर्मा क शब्दो म उनकी प्रतिभा जिस बुलन्दी पर यहाँ दिखाई देती है उस बुलन्दी पर नाटका और निबन्धों म भी नही दिखाई देती।[14]

भारतेन्दु के दूसरे मौलिक उपन्यास हमारी हठ का उल्लेख प० राम शकर व्यास द्वारा अग्रजी म दिए गये भारतेन्दु रचनावली के विवरण म है।[15] बाबू राधाकृष्णदास लिखते हैं नवीन उपन्यास हमीर हठ बड धूम स आरम्भ किया था परन्तु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे।'[16] इसस अनुमान किया जा सकता है कि हमीर हठ भारतेन्दु क जीवन क अतिम वर्षों म लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रथम परिच्छेद भी अप्राप्य है इसलिए इसक रचनाकाल और स्वरूप क सम्बन्ध म कुछ अधिक नही कहा जा सकता।

भारतेंदु क बाद उपन्यास लखका म दूसरा अमर नाम प० बालकृष्ण भटट का है। व वस्तुत द्वितीय भारतेंदु थ। उनका रहस्यकथा उपन्यास (हिंदी प्रदीप, नवम्बर १८७९) एक कहानी की भांति ही कुछ अधूरी लकिन तगडी रचना है और यदि वह पूरी होती तो उन्नीसवीं सदी के उपन्यासो म एक कहानी के बाद स्थान रखती। इसका नायक तिलकधारी अवध क एक जागीरदार का लडका है। वह एक पेंशनर सिपाही क यहाँ पलने वाली अनाथ बालिका गुणवती को मेले म धक्के से बचाता है। आकषण और कृतज्ञता क सयोग से प्रम जन्म लेता है। दोनो विवाह करने का निश्चय करत हैं। तिलकधारी चीन चला जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसकी मृत्यु हो गई। इधर उसके पचास वर्षीय चाचा स गुणवती की शादी कर दी जाती है। वह लौटने पर चाचा द्वारा घर स निकाल दिया जाता है। एक दिन उसक मरे हुए चाचा क कलेजे स जो कटार निकाली जाती है उस

पर उसका नाम पाया जाता है। यदि यहाँ पर भी उपन्यास के समाप्त होने की सूचना दी जाती तो कलात्मक दृष्टि से विशेष क्षति नहीं होती। यों उपन्यास पूरा होने पर सुखांत अवश्य होता।

कथानक और उसके गठन में भट्ट जी की कारयित्री कल्पना का स्पर्श है। उन्होंने गाँव और शहर की घटनाओं को दक्षता से गुम्फित किया है और पात्रों में मानवीय सम्बन्ध के साथ साथ कलात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है। विवाह के पूर्व प्रेम और उसमें बाधा उपन्यासकारों का प्रिय विषय है। तिलकधारी और गुणवती के प्रेम की उत्पत्ति आकस्मिक रूप से हुई है पर उसका विकास दैनिक परिस्थितियों के बीच स्वाभाविक ढंग से हुआ

कभी दोनो मिल एक ही किताब पढ़ने लगते थे और पुष्प रस समान उसके स्वास प्रस्वास में उत्पन्न भाफ रूपी मधुपान कर मधुकर सा उन्मत्त हो जाता था कभी अपनी प्रेमपात्री को सुईकारी का काम करते देख गुलाब की पखुरी सा सुकुमार अधर और कोमल गोल कपोल की शोभा खड़ा निरखा करता मानो बहुत दिनों का प्यासा मरुभूमि के पथिक समान उसके अधर रूपी मूंगे के कटोरे में रक्खा हुआ सुधारस उठाकर पीना चाहता है[17]

प्रेमी प्रेमिका का एक साथ मिलकर किताब पढ़ना प्रेमिका को सिलाई करते देखना कितना साधारण प्रतीत होता है लेकिन कितना सुन्दर होता है। जो आकर्षण सुकुमार अधर और गोल कपोल की कल्पना में नहीं है वह जीवन की वास्तविकता में है। यथार्थ के रोमानी पक्ष की ओर सभी ध्यान नहीं देते। यहाँ मनोवैज्ञानिक उपन्यास की तरह भावावेग का प्रभाव मन पर नहीं बल्कि शरीर पर दिखाया गया है।

प्रेमी प्रेमिका भतीजा चाची बनकर बड़े अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाते हैं कि वे एक दूसरे को किस भाव से देखें। भट्टजी ने नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर कथा की रमणीयता बढ़ाने की चेष्टा की किन्तु तिलकधारी को घर से निकाल कर और उसके चाचा की हत्या कर उन्होंने उसका निर्वाह नहीं किया। यदि वे प्रेम से उत्पन्न होने वाले आन्तरिक और बाह्य संघर्षों का विस्तार से वर्णन करते तो कलात्मक सम्भावना पूरी तरह प्रकट होती। शायद उनका उद्देश्य त्रिकोणात्मक प्रेम का रूप अंकित करना नहीं था। वे समाज की समस्या-वृद्ध विवाह की समस्या-प्रस्तुत करना चाहते थे। इस समस्या का जहाँ उन्होंने यथार्थ चित्रण किया है वहाँ चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश में उसका आदर्शवादी

रूप उपस्थित किया गया है।

ये मानव हृदय का तलस्पर्शी अध्ययन नहो करते हैं रूप और अवस्था का वर्णन कर रह जाते हैं। उनकी दुनियाँ म रूप नारी को ही नहीं पुरुष को भी मिला है। धनुषधारी और तिलकधारी मानों 'रूप लावण्य के मनोहर फूलों ■ सुशोभित वसन्त ऋतु क चत्र और बसाख के दो महीने हों।'[18] एक क चेहरे स कुटिलता और दूसरे के चेहरे से सरलता टपकती है। बाह्य सौदय म समानता होते हुए भी अन्त सौन्दय म जो विभिन्नता है वह बाह्य सौन्दय म प्रकट हो जाती है। प्रमदा क नखशिख के वणन में पुरानी रीति की आल कारिकता है। इन्दु का सौन्दय-वणन नवीनता लिए हुए है टटके कमलो क फूल क समान उसके अग सगमरमर सा गोरे वण रेशम क लच्छे स भूरे बाल, ऊष क पहले सा गोल कपोल।[19] भट्टजी के नाम्शिख बड मर्मस्पर्शी होत हैं। चित्रकार जो प्रभाव रगों स उत्पन्न करता है वह वे शब्दों से करत हैं।

चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक यथाथ का अभाव रहते हुए भी सामाजिक यथाथ है। उन्होंने प्रतिनिधि पात्रों का चित्रण ही नहीं किया है उनका निर्माण भी किया है। धनुषधारी ह्रासोन्मुख अभिजात वग का प्रतिनिधित्व करता है तिलकधारी उगत हुए मध्यवग का। एक आवारा विलासी शराबी तथा नाच-गान बटेरबाजी और पतगबाजी म दिन काटने वाला है। दूसरा उद्यमी कमठ साहसी और स्वाभिमानी है। वह बापदादे क सचित धन पर पलने क बदले आत्मनिर्भर रहन में गौरव का अनुभव करता है और जीविका क लिए विदेश-यात्रा करने को तैयार हो जाता है। जागीरदार होते हुए भी वह सामती रूढ़ियों का विरोधी है। असहाय गुणवती का पालन पोषण करने वाला बसरीसिंह भी नवीन विचारों से प्रभावित है और स्त्री शिक्षा का हार्दिक समथक है। स्त्री-पात्रों म गुणवती पाठकों की महानुभूति प्राप्त करती है। वह तिलकधारी को वरण करने के बाद दूसरे को देखना भी नहीं चाहती किन्तु बसरीसिंह के कहने पर बूढ़ जगीरदार स शादी करना मजूर कर लेती है। वह उस भारतीय नारी की प्रतिनिधि है जो प्रेमपाश में बधकर भी सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करती। उसकी विवशता मूक विद्रोह बनकर रह जाती है। उसके ठीक विपरीत इन्दु है जो लखनऊ की तितली बनी हुई है। नखशिख यौवन मदवाली शोभायिता साड़ी पहनती है पंटी बजाकर दासी को बुलाती है और एक पढ़े लिखे सेठ का

प्यार करती है। ऐसी आधुनिका के दर्शन नये उपन्यासो मे ही होते हैं। अपनी उदारता एव प्रगतिशीलता के कारण भट्टजी ने उसका जसा सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है वसा नये उपन्यासकार नही कर पाते हैं।

उपन्यास विभिन्न वर्गों के पात्रो की चित्रशाला है। उपन्यासकार केवल नायक के व्यक्तित्व का विकास न दिखाकर सभी पात्रो का रेखाचित्र अंकित करता है। बौने कुबडे नौकर काली कलूटी दासी का भी उसने आकर्षक रूप म प्रस्तुत किया है। इसमें उसकी मानवतावादी दृष्टि और जनतान्त्रिक भावना निहित है। वह और आगे बढता है तथा मानव लोक म पशु को भी स्थान देता है। कुत्ता मानिक मालिक के शव पर रो रोकर जान देता हुआ दिखाया गया है।

लेखक के व्यापक दृष्टिकोण के कारण रहस्यकथा एक साथ ही पारिवारिक, जासूसी और सामाजिक उपन्यास है। इसम उस परिवतन का प्रतिबिंब है जब सामती संस्कृति का पतन और आधुनिक सभ्यता का उदय हो रहा था। गाँव म जागीरदारो का षडयन्त्र और नगर म बढ़ती हुई विलास वासना दिखाने के लिये अवध की एक जागीर और लखनऊ को घटनास्थल बनाया गया है। लखनऊ ऐसा नगर है जहाँ कलई की भी कलई की जाती है। लेखक कलई को हटाकर सच्चे रूप का उदघाटन करता है। पनडब्बा लेकर चलने वाली बूढ़ी विधवा किरायादारिन नजाकत और नखरे म एक ही है। 'जहाँ खूबसूरती की बिक्री बड चाह और कद्र के साथ होती है वहाँ अधड प्रमदाओ की पूछ नही है।

समाज की आलोचना करन म भट्टजी का व्यग्य तीखा हो जाता है शली आवेशमयी बन जाती है। कहावतो और मुहावरो से उन्हें शक्ति मिलती है। बिगड हुए रईस पर चोट करते हुए वे कहते हैं 'एक तो चढ़ती उमर दूसरे बड नामी गरामी रईस के लडके सिफारिशी घोडो बादशाह को भी लात मारती है।[0] फिर भी उनके वणन म लालित्य और वार्तालाप म स्वाभाविकता है। पात्रानुकूल वार्तालाप क प्रयोग म भाषा को ज्यो का त्यो प्रस्तुत करन की क्षमता है। बौने और कुबड की बातचीत बडी मजेदार है। कुबडा अपन कूबड को सौभाग्य लक्ष्मी क खलने का गेंद कहता है। वणन और वार्तालाप म रोचकता होत हुए भी कहानी म रवानी नही है।

बगला के अध ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास

जब हिंदी म मौलिक उपन्यास का नाम भी नही था, बगला म

बंकिमचन्द्र और उनके अनुगामी रमेशचन्द्र स्काट तथा लिटन के उपन्यासों को भारतीय वेश में सजाकर भारतीय कथासाहित्य में मौलिक परिवर्तन उपस्थित करने का श्रेय लूट रहे थे। बंकिम की रचनाएँ बंग दर्शन में धड़ाधड़ निकल रही थीं और उनकी ख्याति बंगाल से बाहर फैल रही थी। हिन्दी लेखक अपने पड़ोस की नई साहित्यिक गतिविधि से परिचित और प्रभावित हो रहे थे। निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति का मूल भारतेन्दु की यह अमर वाणी उन्हें अपने भाषा भण्डार को नए साहित्य से सुसज्जित करने की प्रेरणा दे रही थी। आर्यभाषा के लिए सर्वस्व समर्पित करने वाले बाबू गदाधर सिंह ने बंकिम की 'दुर्गेशनन्दिनी' और रमेशचन्द्र दत्त के बंगविजेता का अनुवाद कर हिन्दी में बंगला उपन्यासों के लिए प्रवेशद्वार बना लिया। प्रथम उपन्यास कविवचनसुधा (अनेमानन १८७७–७८) में निकलकर पुस्तकाकार दो भागों में क्रमश १८८२ और १८८४ में प्रकाशित हुआ। बंगविजेता सारसुधानिधि में २६ मई १८७९ से छपने लगा। दोनों ऐतिहासिक रोमांस हैं। दोनों में अकबर के शासन काल को पृष्ठभूमि बनाकर स्वच्छन्द प्रेम का क्रीडा विलास दिखाया गया है। इतिहास प्रसिद्ध पात्रों को कल्पनाप्रसून पात्रों ने अपना आट में छिपा लिया है। ऐतिहासिक घटनाएँ गौण और सुकुमार भावों का चाम प्रतिपाद्य प्रबल हो उठा है। बंकिम अधीर पाठकों को उपन्यास का ऐतिहासिक अंश छोड़कर आगे बढ़ने की सलाह देते हैं। इसी प्रकार इतिहास-लेखक होकर भी रमेशचन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति को जानने के लिए इतिहास पठन की सिफारिश करते हैं। दोनों के पात्र व्यक्ति न होकर भावना के पुतले हैं। पुरुषों में स्त्रियाँ में अधिक आकर्षण है। बंकिम की आयशा अपने पिता के हिन्दू शत्रु की सेवा अपने हरम में करते-करते उसे अपना प्रेमी बना लेती है। रमेशचन्द्र का पठानी अपने आश्रयदाता की लड़की पर रीझ जाता है। ये परिस्थितियाँ नाटकीय सौंदर्य की सृष्टि करती हैं सामाजिक सत्य की अभिव्यक्ति नहीं करतीं। इन उपन्यासों की रमणीयता रूप-यौवन की छटा, रोमानी वातावरण, प्रगल्भ भाव-व्यंजना पर निर्भर है। अनुवाद की भाषा परिमार्जित है। 'बंगविजेता' में उर्दू शब्द उद्धरण चिह्नों में बन्द हैं, मानो वे अछूत हों।

बंगविजेता से एक महीना पहले सारसुधानिधि में (२८ एप्रिल १८७९) तपस्विनी नामक एक उपन्यास निकलकर बन्द हो गया। रचयिता का नामोल्लेख नहीं है। पहले सन्ध्या का विस्तृत अलंकृत वर्णन है फिर गंगा

किनारे सुकोमल करतल पर कपाल धरकर बठी हुई एक चतुर्दश वर्षका बालिका के सघामय सुधांशु विनिक्षित मुखमण्डल नवजलधर सदृश आलुलायित सदीघ केशजाल की शोभा है। भाव और भाषा की दृष्टि स उपन्यास बगला का अनुवाद प्रतीत होता है। कहीं व्रजनाथ भट्टाचाय की तरुण तापसी ही तपस्विनी नहीं बन गई हो।

भारतेन्दु द्वारा लिखित कहा जाने वाला चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश तथा 'राजसिह भी बगला के अनुवाद हैं।

कुछ विद्वान चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश को भारतेन्दु की मौलिक रचना और हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न पूणप्रकाश और चन्द्रप्रभा नाम का सव प्रथम सामाजिक उपन्यास लिखा था।[21] डा० रामविलास शर्मा न उसे हिन्दी के यथाथवादी कथा साहित्य की पहली कड़ी[22] मानकर उसका विशद विवेचन किया है।

हरिप्रकाश यन्त्रालय से कुलीन कन्या अथवा चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ था। मुखपृष्ठ पर यह लिखा है कि वह कुलीन कन्या विवाह सम्बन्धी एक छोटी सी आख्यायिका है जो बगभाषा का आशय लकर प्रकाश की गई है। अनुवाद और प्रकाशनकाल का उल्लेख नहीं ह। इस पुस्तक को खड्गविलास प्रस ने पहली बार १८८९ म और दूसरी बार १९२७ मे पूणप्रकाश और चन्द्रप्रभा नाम स प्रकाशित किया। दोनों सस्करणो म लेखक का नाम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ह।

उसके मूल लेखक भारतेन्दु नहीं हैं और न वह हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास ही ह। हरिप्रकाश यन्त्रालय के सस्करण स यह स्पष्ट ह कि वह बगला उपन्यास का रूपान्तर ह। बाबू राधाकृष्णदास[23] और बाबू शिवनन्दनसहाय[24] का कहना ह कि भारतेन्दु ने उसका अनुवाद कराकर शुद्ध किया था। उनके कथन की पुष्टि 'चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश तथा स्वरूपचद जन द्वारा मराठी से अनूदित रमा और माधव (१९०३) की तुलना स होती ह। दोनो की कथा एक ही ह पात्रों के नाम और वणनशैली में थोडा अतर है। चन्द्रप्रभा और पूणप्रकाश मे बूढ़ वर ढुंढिराज का चित्र इस प्रकार खींचा गया ह

देखने म दीर्घकार कृष्णवर्ण और कृश था अवस्था अनुमान चौंतीस

बरस की सिर के बाल दो एक पकने लगे हैं और साम्हने के दो दाँत गिर गये हैं।'

'रमा और माधव' में बूढ़े वर अन्नासाहब का यह चित्र है

उनकी आयु ६४ वर्ष से अधिक नहीं थी, शरीर किंचित ऊंचा होने से और वृद्धावस्था की अशक्ति के कारण पीठ किंचित टेढ़ी दीखती थी मस्तक पर बहुत से बाल कमी के नौ दस ग्यारह हो चुके थे मुख में एक दाँत न था।

चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश मूलतः पहले बंगला में लिखा गया हो या मराठी में यह निश्चित है कि वह अनुवाद है।[25] बाबू ब्रजरत्नदास ने उसे श्रीमती मल्लिका देवी द्वारा अनूदित कहा है।[26] भारतेन्दु की प्रेरणा से देवीजी ने अनुवाद किया होगा और फिर भारतेंदु ने उसका संशोधन किया होगा। उसका प्रकाशनकाल अज्ञात है इसलिए अनूदित उपन्यासों में भी कालक्रम की दृष्टि से उसका स्थान निर्धारित करना कठिन है। खड्गविलास प्रेस से १८८४ में प्रकाशित भाषासार में वह संकलित है अतः वह १८८४ के बाद की रचना नहीं है। उसकी प्राचीनता असंदिग्ध है।

राजसिंह के सम्बन्ध में बाबू राधाकृष्णदास का कहना है कि भारतेंदु ने उसका अनुवाद कराकर प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखा आगे कुछ शुद्ध किया'[27] बाबू ब्रजरत्नदास और बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार अनुवाद अधूरा रह गया था, बाबू राधाकृष्णदास द्वारा पूरा किया गया तथा छपाया गया।[28] संभव है अनुवाद मल्लिका देवी द्वारा कराया गया हो भारतेंदु ने संशोधन किया हो और राधाकृष्णदास ने कुछ परिवर्तन-परिवर्धन कर उसे छपवाया हो। किन्तु खड्गविलास प्रेस से 'राजसिंह' १८९४ में भारतेंदु के नाम से निकला। परिच्छेदों के प्रारम्भ में तुलसी दास, नन्ददास रहीम आदि की कविताओं के अवतरण हैं। भाषा शैली में भारतेन्दु की कलम का स्पर्श मिलता है लगता है जैसे मूललेखक बंकिम नहीं हैं।

अनुवादों का स्वरूप जितना ही सुन्दर है मूल रचनाओं के भाव और विचार उतने ही मनोरम हैं। चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश अनूदित होकर भी मौलिक उपन्यास के रूप में समादृत हुआ है। चन्द्रप्रभा का पिता उसे बूढ़े वर के हाथ बेचना चाहता है। उसकी माता और मामा बड़ी चतुराई से उसका विवाह उसके प्रेमी पूर्णप्रकाश के साथ करा देते हैं। पुरानी परम्परा

नई पौध से पराजित होती है। नवनिर्मिता नायिका से उसकी माता गुणमञ्जरी अधिक प्रगतिशील और आकर्षक है। उसके रूप मे युगो से पददलित नारी स्वाधीनता और सम्मान की रक्षा के लिए सहसा जाग उठी है। मूलकथा म व्यग्य और विद्रोह की ध्वनि है, प्रासगिक कथा मे गूढ भावो की मदु झकार है जिससे उपन्यास और सुदर हो सका है। पूर्णप्रकाश अपनी बहन से बातें करता है और उसका अन्धा बहनोई उसे पराया समझकर मन ही मन जलता रहता है। अत में उसकी शका निमूल सिद्ध होती है।

राजसिंह की भूमिका मे बकिम ने स्वय उसे अपना एकमात्र वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास माना है पर वह भी अर्ध ऐतिहासिक है। इसम समकालीन सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था का चित्रण तो नही है औरगजेब के महल की रहस्यमय प्रणय लीला का वणन अवश्य है। चचल कुमारी औरगजेब की वासना पकिल दृष्टि से बचने के लिए राणा राजसिंह को पति मानकर पत्र लिखती है। राजसिंह उसकी रक्षा करने के लिए औरगजेब के साथ युद्ध करता है और विजयी होता है। बकिम की रोमानी राष्ट्रीयता और आदर्शवादी भावना उपन्यास म उभर कर आई है। उनकी आवेशशील प्रकृति उनके पात्रो म परिलक्षित होती है। दुर्गेशनदिनी की भांति यहां भी घर घर म सुन्दरी है। राजकुमारी से उसकी सहेली अधिक मोहिनी है। राजपूत बालाओ की वीरता और दृढता हिन्दू हृदय का स्पश कर लेती है। विद्युतप्रभा औरगजेब की तसवीर को ठुकराकर कहती है जैसे खिलौना खेलकर सासारिक सुखो की साध मिटाते है हमने वसे ही मोगल बादशाह के मुह म लात मार कर अपनी साध मिटाया है।'

१८८१ म बगभाषा से बिदा चतुरा तथा रामेश्वर का अदृष्ट राधाचरण गोस्वामी और राधाकृष्ण दास द्वारा अनुवादित होकर हरिश्चन्द्र चद्रिका और मोहनचन्द्रिका म क्रमश सितम्बर और दिसम्बर के अको मे प्रकाशित हुए। उसी वष सितम्बर म रमाशकर व्यास न मधुमती का अनुवाद किया लेकिन उसका प्रकाशन १८८६ म हुआ। इन रचनाओ को उपन्यास कहा गया है पर आकार की दृष्टि स गल्प की श्रेणी म रखा जाय तो अनुचित नही होगा। बिदो चतुरा तो केवल ग्यारह पृष्ठो म समाप्त हो गई है। उसके मूल लेखक सम्भवत सतीशचन्द्र बसु हैं। उन्होने एक अहीरिन कुटनी का चरित्र चित्रित किया है। रामेश्वर का अदृष्ट बकिमचन्द्र के भाई सजीवचन्द्र द्वारा लिखित है। इसम रामेश्वर का अपनी पत्नी से, जो पदमा

म कूद गई थी पर मरी नही थी, मार्मिक पुनर्मिलन 'होता है। मधुमती' की कथावस्तु भी ऐसी ही है। उसक रचयिता का उल्लेख नही किया गया है पर वह पूणचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा रचित है। यह नारी हृदय के भाव-सघष की करुण कहानी है। मधुमती अपने पति से बिछडकर दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती है और जब पहला पति आता है तब दूसरे को छोडकर उसके साथ नदी में डूब मरती है। बगला उपन्यास मे अक्सर पात्रो का अलग कर मिलाया और मारकर जिलाया जाता है। फालतू भावुकता, अनहोनी घटना और रोमानी कल्पना उसकी विभूति है।

मूल्याकन

अब तक जिन अनूदित-मौलिक, अपूण पूण रचनाओ का अध्ययन किया गया है उनम हि दी-उपन्यास की परम्परा का आरम्भ बिन्दु किस माना जाय, यह विचारणीय है।

अनुवाद और रूपान्तर इस ऐतिहासिक महत्त्व क अधिकारी नही हो सकते यद्यपि कालक्रम और परिमाण की दष्टि से वे अग्रगण्य हैं। मौलिक कृतिया म 'देवरानी जेठानी की कहानी' से लेकर 'रहस्यकथा' तक सभी नये ढग की कृतियाँ हैं किन्तु सभी नये ढग के उपन्यास की विशेषताओ स पूण नहीं हैं। देवरानी जेठानी की कहानी का विषय और उसका प्रस्तुतीकरण नया है किन्तु कथा नही पुरानी है उस बडी कहानी कहकर आसानी स छोट दिया जा सकता है। 'वामा शिक्षक' म अनेक आवश्यक गुण होते हुए भी कथानक जसी कोई वस्तु नही है साथ ही वह अध मौलिक है, अत उसका मूल्य अधिक नही है।

'भाग्यवती' पुरानी कथा परम्परा स पूणत विछिन्न नहीं है। उसके स्वरूप, उपादान और प्रयोजन म नवीनता रहत हुए भी प्राचीनता ह। प० श्रद्धाराम पुरानी कथाओं के चिर-परिचित पात्र—राजा साधु ठग और पण्डित—को भूल नहीं सक हैं। मूलकथा की भूमिका राजा और पण्डित क सवाद क रूप में वर्णित ठगों की रोमाचकारी लीलाओ से बनती ह जो पुराण नाली की याद दिलाती है। उसका आरम्भ पूर्वापर क्रम से और विकास असड गति से होता है। घटनाओं के विन्यास में शिथिलता ह। दो बार कहानी का अंत होते होते रह गया ह भाग्यवती के ससुराल लौटने और यात्रा से आने पर। पुस्तक अध्यायों म विभाजित नहीं है। जसे महाकाव्य

में सर्गों का इतना महत्त्व ह कि उनके आधार पर उसकी परिभाषा निर्मित हुई ह् वसे ही उपन्यास मे अध्यायो की उपयोगिता ह । प्रत्येक अध्याय पिछले अध्याय से कुछ ग्रहण करता ह और अगले अध्याय को कुछ प्रदान करता ह । कथात्मक वञ्चना और कलात्मक विश्राम (रिलीफ) अध्याया पर ही अव लम्बित हैं। पात्रो के प्रवेश और प्रस्थान के लिए उनकी आवश्यकता होती ह ।

पुराने ढर्रे की । शुकबहत्तरी मनसुखी और सुन्दरसिंह का वत्तान्त और भाग्यवती म बहुत समानता ह । शुकबहत्तरी की तरह भाग्यवती म स्त्रियो की बनावटी हसी और आँसू झूठी कसम प्रपच भरी बातचीत बहानाबाजी और धूर्तता का रूप दिखाकर स्त्री चरित्र की झांकी प्रस्तुत की गई ह । दोना की नायिकाआ के नाम भी मिलते जुलते हैं यद्यपि भाग्यवता और प्रभावती दो भिन्न युगा की सष्टि हैं । मनसुखी की भाँति भाग्यवती भी चतर और साहसी ह और सपरिवार गगा नहाने जाती ह । मनसुखी का चाचा धूर्त फकीर स उसी तरह ठगा जाता ह जिस तरह भाग्यवती का ससर । फकीर तम्बाकू की चाँदी बनाकर दिखाता है और मनसुखी क चाचा से यह कहकर गहना लेता है कि वह उसका पचास गुना बना देगा लेकिन हाँडी म कंकड भरकर चम्पत हो जाता ह उसी प्रकार भाग्यवती के ससुर का एक साधु सखिया और पारे से चाँदी बनाकर दिखा देता ह और एक दिन उसका सारा गहना लेकर हाँडी म कंकड छोड जाता ह । दोनो पस्तको मे गगा किनारे के साधुओं का पाखण्ड वर्णित ह और धर्तों की बातचीत म कृत्रिम स्वाभाविकता का पट ह । चरित्र कथाभाग वार्तालाप आदि का साम्य यह सूचित करता ह कि यदि भाग्यवती पञ्जाब स प्रकाशित मनसुखी और सुन्दरसिंह का वत्तान्त स प्रत्यक्षत प्रभावित नही भी हो ता उसका ढाँचा परानी कथा कहानी से भिन्न नहीं ह । श्रद्धारामजी ने निश्चय ही अपनी कहानी का नमूना पश्चिम से नहीं लिया ह ।

सम्भव ह उन्होने मनसुखी और सुन्दरसिंह के जिन दृष्टान्तो और प्रसगा का उपयोग किया है वे लोक परम्परा से लिए गये हो अथवा वे उनके जीवन अनुभव और आत्म निरीक्षण के अग हो । वे स्वय कथावाचक थे और कथावाचक किसी गम्भीर विषय को समझाने के लिए रोचक कथा वार्ता और दृष्टान्त का आश्रय लेते हैं । वह सामग्री जीवन स मिला हो या पुस्तक स उसे उन्होंने मौलिक स्वतन्त्र और सरस रीति से सजाने म अपनी कल्पना